प्रकाश सरस्वती

भु के मार्ग पर

डॉ. रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान
इलाहाबाद

प्रभु के मार्ग पर

प्रभु के मार्ग पर

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

सम्पादिका
उषा ज्योतिष्मती
एम० एस-सी०, डी० फिल०

डॉ० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान
इलाहाबाद

प्रस्तावना

सन् १९६९ में प्रयाग विश्वविद्यालय के रसायन विभागाध्यक्ष प्रो० डॉ० सत्यप्रकाश जी दक्षिण अफ्रीका गये थे, और वहाँ उन्होंने नैटाल, ट्रान्सवाल, और केपप्रॉविन्स के अनेक नगरों में व्याख्यान दिए, जिनको हमारे स्वाध्याय-संस्थान ने विजिट हेरिटास के नाम से १९७१ में प्रकाशित किया था। ये व्याख्यान अंग्रेजी में थे। ११ मई १९७१ को प्रो० सत्यप्रकाश सन्यास ले लिया और तबसे हम परिव्राजक स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती नाम से उनसे परिचित हैं। स्वामी जी ने संन्यास के अनन्तर १९७१ में पूर्वी अफ्रीका के स्वतन्त्र देशों की यात्रा की- केन्या, ऊगाण्डा और टैंजानिया की। पूर्वी अफ्रीका की दूसरी यात्रा १९७४ में, तीसरी यात्रा १९७६ में, और चौथी यात्रा १० जुलाई से १३ सितम्बर १९७७ की थी। इस चौथी यात्रा में केन्या के कतिपय नगरों में स्वामी जी ने व्याख्यानों की एक श्रृंखला आरम्भ की। इन व्याख्यानों को छोटी-सी पुस्तिका के रूप में हमें प्रकाशित करने का सुयोग प्राप्त हो रहा है। इस पुस्तिका की सामग्री का संकलन और सम्पादन सस्थान की प्रमुख सदस्या डॉ० श्रीमती उषा ज्योतिष्मती जी ने किया है। स्वामी जी अपने प्रवचनों में बहुधा श्रुतिवचनों का उद्धरण दिया करते हैं। प्रत्येक प्रवचन के प्रारम्भ में इन श्रुतिवचनों को जनता के हित के लिए पद-विच्छेद और अनुवाद के साथ भी दिया जा रहा है, जो इस सम्पादन की विशेषता है। ये प्रवचन "आर्य

प्रारम्भ

श्रुति-वचन

१

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।
(ऋ० १०।१२१।१; अथर्व० ४।२।७; यजु० १३।४; २३।१)

हिरण्यगर्भः । सम् । अवर्त्तत । अग्रे । भूतस्य । जातः । पतिः । एकः । आसीत् । सः । दाधार । पृथिवीम् । द्याम् । उत । इमाम् । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ।।

अर्थ—(हिरण्यगर्भः) वह तेजोमय परमात्मा, जिनके गर्भ में सूर्य्यादि दिव्यलोक हैं, (अग्रे) सबसे पहले (सम् अवर्त्तत) विद्यमान था। (जातः) समस्त उत्पन्न [भूतस्य)' प्राणियों और लोकों का (एकः) वह एकमात्र (पतिः) पति अर्थात् स्वामी (आसीत्) था। (सः) वह (इमाम्) इस (पृथिवीम्) पृथ्वी को भी (उत) और (द्यौः) द्यौलोक अर्थातु सूर्य्यादि को (दाधार) धारण किये हुए है। (कस्मै=एकस्मै) उस एकमात्र सुखस्वरूप परमात्मा के प्रति (हविषा) अतिप्रेम और श्रद्धा से (विधेम) हम अपना आत्म समर्पण करें।

२

अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमऽउक्तिं विधेम ॥
(यजु० ४०।१६; ऋ० १।१८९।१)

अग्ने । नय । सुऽपथा । राये । अस्मान् । विश्वानि देव । वयुनानि । विद्वान् । युयोधि । अस्मत् । जुहुराणम् । एनः । भूयिष्ठाम् । ते । नमःऽउक्तिम् । विधेम ।

अर्थ—(अग्ने) हे सबसे आगे पूजनीय ज्ञान स्वरूप परमात्मन् ! (देव) सकल सुखों के देने वाले परमेश्वर ? (राये) सुख और समृद्धि के लिये आप (सुपथा) कल्याणमय मार्ग से (नय) ले चलिये । (अस्मान्) केवल आप हमारे (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) कर्मों को (विद्वान्) जानते हैं । (अस्मत्) हमसे (जुहुराणम्) कुटिल (एनः) पाप-कर्मों को (युयोधि) दूर कीजिए । (ते) आपकी (भूयिष्ठाम्) बहुत अधिक, भूरि-भूरि (नमःउक्तिम्) विनम्र प्रशंसा (विधेम) हम सदा करते रहें ।

३.

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥
(यजु० ३२।१)

तत् । एव । अग्निः । तत् । आदित्यः । तत् । वायुः । तत् । उ । चद्रमाः । तत् । एव । शुक्रम् । तत् । ब्रह्म । ताः । आपः । सः । प्रजापतिः ॥

अर्थ—(तत्) वह एकमात्र परमेश्वर (एव) ही (अग्निः) तेजोरूप और सबसे आगे पूजनीय होने से अग्नि कहलाता है,

(तत्) वही (आदित्यः) अखण्डनीय होने से आदित्य कहलाता है। (तत्) वही (वायुः) जगद् का धारक और बलवान् होने से वायु कहलाता है। (तत् उ) और वही (चन्द्रमाः) सुख आनन्द देने से चन्द्रमा कहलाता है। (तत् एव) वही (शुक्रम्) निष्कलङ्क, शुद्ध और स्वच्छ होने से शुक्र है, (तत्) वही (ब्रह्म) महान् और ज्ञान का स्रोत होने से ब्रह्म है, (ताः) वही (आपः) व्यापक होने से आपः है, और (सः) वह प्रभु (प्रजापतिः) प्रजा का पालक होने से प्रजापति है।

४

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥
(ऋ० १।१६४।४६)

इन्द्रम्। मित्रम्। वरुणम्। अग्निम्। आहुः। अथः। दिव्यः। सः। सुपर्णः। गरुत्मान्। एकम्। सत्। विप्राः। बहुधा। वदन्ति। अग्निम्। यमम्। मातरिश्वानम् आहुः।

अर्थ—(अग्नि) सबसे आगे पूजनीय तेजोमयं अग्नि परमात्मा को ही इन्द्र, मित्र, वरुण कहा जाता है। वही दिव्य, सुपर्ण, और गरुत्मान् है। (एकम्) वह एक (सद्) है, किन्तु (विप्राः] विद्वान् लोग (वहुधा) उसे बहुत से (वदन्ति) नामों से सम्बोधित करते हैं। उसी का नाम अग्नि, यम और मातरिश्वा (आहुः) कहा जाता है।

५

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथा तथ्यतोऽर्थान्
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ (यजु० ४०।८)

सः । परि । अगात् । शुक्रम् । अकायम् । अव्रणम् । अस्नाविरम् । शुद्धम् । अपापविद्धम् । कविः । मनीषी । परिभूः । स्वयम्भूः । याथातथ्यतः । अर्थान् । वि । अदधात् । शाश्वतीभ्यः । समाभ्यः ॥

अर्थ—(सः) वह परमात्मा (परि अगात्) सब ओर से व्याप्त है। वह (शुक्रम्) स्वच्छ, निर्मल और शीघ्रकारी और शक्तिमान् है। (अकायम्) शरीर से रहित, शरीर में कभी न आने वाला, (अव्रणम्) व्रण, फोड़े-फुन्सी, छेद आदि से रहित है। (अस्नाविरम्) नाड़ी आदि के बन्धन से रहित है। (शुद्धम्) शुद्ध है। (अपाप विद्धम्) शरीर में न आने के कारण पाप से वह कभी विद्ध नहीं होता। (कविः) क्रांतिदर्शी सर्वज्ञ, (मनीषी) सबके मनों को जानने वाला, (परिभूः) पापियों का तिरस्कार करने वाला, या सब ओर से व्याप्त, (स्वयम्भूः) अपने आप सदा से एकरस रहनेवाला, अनाश्रित है। (याथातथ्यतः) यथार्थता से (अर्थान्) वेदार्थों को या, वेदवासियों को (शाश्वतीभ्यः) सदा रहने वाली (समाभ्यः) प्रजा के लिये (वि+अदधात्) अच्छी तरह उपदेश करने वाला है।

६

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम् ॥

(यजु० ४०।१)

ईशा । वास्यम् । इदं । सर्वम् । यत् । किम् । च । जगत्याम् । जगत् । तेन । त्यक्तेन । भुञ्जीथाः । मा । गृधः । कस्य । स्वित् । धनम् ॥

अर्थ—(ईशा) ईश्वर से (वास्यं) बसा हुआ (इदं) यह (सर्वं) सब (यत्) जो (किम्, च) कुछ भी (जगत्यां) गतिशील संसार में (जगत्) गतिमान् है, (तेन) उससे (त्यक्तेन) त्याग भाव से (भुञ्जीथाः) भोग करो; (मा) मत (गृधः) लालच करो। (कस्यस्वित्) किसका भला यह (धनम्) धन है ?

७

यो विद्यात्सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥

(अथर्व० १०।८।३७)

यः । विद्यात् । सूत्रम् । विततम् । यस्मिन् । ओताः । प्रजाः । इमाः । सूत्रम् । सूत्रस्य । यः । विद्यात् । सः । विद्यात् । ब्राह्मणम् । महत् ।

अर्थ—(यः) जो (विततं) फैले हुए (सूत्रं) सूत्र को (विद्यात्) जान पाया है, (यस्मिन्) जिसमें (इमाः) ये (प्रजाः) प्रजायें अर्थात् उत्पन्न पदार्थ (ओताः) ओत-प्रोत हैं। (सूत्रस्य) सूत्र के भी (सूत्रं) सूत्र को (यः) जो (विद्यात्) जानता है, (सः) वही वस्तुतः (महत्) बड़े (ब्राह्मणं) ब्रह्म, रचयिता परमेश्वर को (विद्यात्) जानता है।

८

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दो ह जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥

(अथर्व० १९।६।१३; यजु० ३१।७)

तस्मात् । यज्ञात् । सर्वहुतः । ऋचः । सामानि । जज्ञिरे । छन्दः । ह । जज्ञिरे । तस्मात् । यजुः । तस्मात् । अजायत ।

अर्थ—(तस्मात्) उस (सर्वहुतः) सबके द्वारा पूजनीय (यज्ञात्) यज्ञरूप व्यापक प्रभु से (ऋचः) ऋचायें, ऋग्वेद के मन्त्र, और (सामानि) सामवेद के गेय मन्त्र (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए। (छन्दः) अथर्ववेद के छन्द-मन्त्र (ह) निश्चयपूर्वक (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए, (तस्मात्) उससे ही। (यजुः) यजुर्वेद की यजूंषियाँ भी (तस्मात्) उसी से (अजायत) उत्पन्न हुईं।

८

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि ।
बलमसि बलं मे धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि ।
मन्युरसि मन्युं मे धेहि । सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥

(यजु० १९।९)

तेजः । असि । तेजः । मयि । धेहि । वीर्यम् । असि । वीर्यम् । । मयि । धेहि । बलम् । असि । बलम् । मे । धेहि । ओजः । असि । ओजः । मयि । धेहि । मन्युः । असि । मन्युम् । मे । धेहि । सहः । असि । सहः । मयि । धेहि ॥

अर्थ—हे प्रभो ! तू (तेजः) तेज (असि) है, (मयि) मुझमें (तेजः) तेज (धेहि) धारण करा। तू वीर्य है, मुझमें वीर्य धारण करा। तू बल है, मुझमें बल धारण करा। तू ओज है, मुझमें ओज धारण करा। तुझमें मन्यु (क्रोध या अभिमान) है, मुझमें मन्यु धारण करा। तुझमें साहस (या सहनशीलता) है, मुझमें साहस (या सहनशीलता) धारण करा।

१०

स एतमेव सीमानं विदार्यैतया द्वारा प्रापद्यत ।
सैषा विदृतिर्नाम द्वास्तदेतन्नान्दनम् ।
तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्नाः ।
अयमावसथोऽयमावसथोऽयमावसथ इति ॥

(ऐतरेय उप० १।१२)

सः । एतम् । एव । सीमानम् । विदार्य । एतया । द्वारा । प्रापद्यत । सा । एषा । विदृतिः । नाम । द्वाः । तद् । एतत् । नान्दनम् । तस्य । त्रयः । आवसथाः । त्रयः । स्वप्नाः । अयम् । आवसथः । अयम् । आवसथः । अयम् । आवसथः । इति ॥

अर्थ—[सः) वह (एतम् एव) इस ही (सीमानम्) सन्धियों या सीमाओं, या ब्रह्मरन्ध्र को (विदार्य) फाड़ कर (एतया) इस (द्वारा) दरवाजे से (प्रापद्यत) शरीर में प्रविष्ट हुआ । (सा एषा) वह यह (सीमा-ब्रह्मरन्ध्र) ही (विदृति) विदृति (नाम) नाम वाला (द्वाः) द्वार है । (तद् एतत् । यह वह ही (नान्दनम्) नान्दन या आनन्द-प्रदाता है । (तस्य) उसके (त्रयः) तीन जन्म हैं; (आवसथाः) रहने के घर भी (त्रयः) तीन ही हैं, (स्वप्नाः) सोने के स्थान भी तीन हैं । यह पहला (आवसथः) घर दाहिना नेत्र है । (अयम्) यह उसका (आवसथ) दूसरा घर अन्तर्मन है, जब वह स्वप्नावस्था में होता है, और (अयम्) यह (आवसथ) उसका तीसरा घर हृदयाकाश है, जब वह सुषुप्ति में होता है ।

११

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया,
दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति ॥

(कठोपनिषद् १।३।१४)

उत्तिष्ठत । जाग्रत । प्राप्य । वरान् । निबोधत । क्षुरस्य । धारा । निशिता । दुरत्यया । दुर्गम् । पथः । तत् । कवयः । वदन्ति ।।

अर्थ—(उत्तिष्ठत) उठो, तत्पर हो, (जाग्रत) जग जाओ, (प्राप्य) प्राप्त करके (वरान्) श्रेष्ठ ज्ञानियों को (निबोधत) भली प्रकार ब्रह्म को जानो, उसका बोध करो। यह मार्ग (क्षुरस्य) छुरे की (धारा) धार है, (निशिता) जो तीक्ष्ण या तेज है, (दुरत्यया) कठिनता से उस पर पैर रखकर चलना है, (दुर्ग) यह अत्यन्त कठिनाइयों वाला (पथः) मार्ग है। (ततः) उसको (कवयः) विद्वान् लोग (वदन्ति) ऐसा ही कहते और मानते हैं।

१२

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ।।

(मुण्डक ३।२।३)

न । अयम् । आत्मा । प्रवचनेन । लभ्यः । न मेधया । न । बहुना । श्रुतेन । यम् । एव । एषः । बृणुते । तेन । लभ्यः । तस्य । एष । आत्मा । विवृणुते । तनुम् । स्वाम् ।।

अर्थ—(अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (प्रवचनेन) प्रवचन से (न) नहीं (लभ्यः) प्राप्त होती (न) न (मेधया) बुद्धि या मेधा से, (न) और न (बहुना श्रुतेन) बहुत अधिक शास्त्राध्ययन से। (यम् एव एषः) जिस किसी को ही यह परमात्मा (वृणुते) वरण करता या चुनता है, अधिकारी मानता है, (तेन लभ्यः) उसके द्वारा ही वह प्राप्त हो पाता हैं। (तस्य) उसके लिए (एषः) यह (आत्मा) आत्मा या ब्रह्म (स्वाम्) अपने (तनुम्) स्वरूप को

(विवृणुते) उद्घाटित कर देता है (उसके प्रति ही वह प्रकट होता है)।

१३

न तत्र चक्षुर्गच्छति, न वाग्गच्छति नो मनो न
विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव।
तद् विदितादथो अविदितादधि। इति शुश्रुम
पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे ॥ (केन उपनिषद् १।३)

न। तत्र। चक्षुः। गच्छति। न। वाक्। गच्छति। नो। मनः। न। विद्मः। न। विजानीमः। यथा। एतद्। अनु-शिष्यात्। अन्यत्। एव। तद्। विदितात्। अथ। उ। अवि-दितात्। अधि। इति। शुश्रुम। पूर्वेषाम्। ये। नः। तत्। व्याचचक्षिरे।

अर्थ—(तत्र) उस प्रभु तक (चक्षुः) आँख (न) नहीं (गच्छति) जाती, (न) और न (वाक्) वाणी (गच्छति) वहाँ तक जाती है। (नो) और न ही (मनः) मन (विद्मः) उसे जानता है। (न) नहीं (विजानीमः) उसे कोई विशेष रूप से जान सकता है। (यथा) जिस प्रकार या जैसे (एतत्) इसका (अनुशिष्यात्) उपदेश किया जाय, बताया जाय (अन्यत्) दूसरा भिन्न (एव) ही (तत्) वह (विदितात्) जाने हुए से (अथ, उ) और (अविदि-तात्) न जाने हुए से, अज्ञात से। (अधि) उसके विषय में (इति) ऐसा ही (पूर्वेषां) पूर्व के ज्ञानी लोगों से (शुश्रुम) हमने सुना है। (ये) जिन्होंने (नः) हमें (तद्) वह, या उसको (व्याचचक्षिरे) बताया या समझाया था।

[प्रभु विदि (ज्ञात) से भी भिन्न है, और अविदित (अज्ञात) से भी भिन्न है। हम उसे बिल्कुल भी नहीं जानते ऐसा भी नहीं कह सकते । पूर्व के ऋषियों से उनके विषय में हम ऐसा ही सुनते आये हैं, कि न उस तक हमारी आँखें जाती हैं, न वाणी, और मन द्वारा वह विचारा और समझा भी नहीं जा सकता है। जब यह अवस्था है, तो उसके सम्बन्ध में किसी को उपदेश दिया भी जावे, तो क्या बताया जाए !!]

१४

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता,
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ।

(श्वेताश्वतर उप० ३।१९)

अपाणिपादः । जवनः । ग्रहीता । पश्यति । अचक्षुः । सः । शृणोति । अकर्णः । सः । वेत्ति । वेद्यम् । न । च । तस्य । अस्ति । वेत्ता । तम् । आहुः । अग्रयम् । पुरुषम् । महान्तम् ।।

अर्थ—(अपाणिपादः) उसके न पैर हैं, और न हाथ, (जवनः) फिर भी वह चलता-फिरता गमनशील है, और (ग्रहीता) ग्रहण करने की (पकड़ने की)क्षमता रखता है। (अचक्षुः) आँखों से हीन होते हुए भी (पश्यति) वह देखता है। (सः) वह (अकर्मः कानों के न होते हुए भी (शृणोति) सब कुछ सुनता है। (सः) वह (वेद्यम्) जानने योग्य सभी बातों को (वेत्ति) जानता है। किन्तु (च तस्य अस्ति न वेत्ता) उसका जानने वाला कोई भी नहीं है। (तम्) उसको (अग्रयम्) सदा से आगे आने वाले व्यक्ति (महान्तम्) महान् (पुरुषम्) अधिष्ठाता पुरुष (आहुः) बताते हैं।

———

सच्ची आस्तिकता

आर्य समाज के आस्तिकता सम्बन्धी विचार वे ही हैं, जो वेद-प्रतिपादित और ऋषि-प्रणीत शास्त्रों द्वारा अनुमोदित हैं। आस्तिकता का अभिप्राय यह है :

(१) जगन्नियन्ता के अस्तित्व और उसके एकत्व में आस्था रखना, पतिरेक आसीत्, वही अकेला हमारा स्वामी है, एकस्मै देवाय हविषा विधेम (एकमात्र उसके प्रति हमारी श्रद्धा और निष्ठा)। उसी के प्रति नम उक्ति विधेम, एकमात्र उसी के प्रति भूयिष्ठ श्रद्धा और हविष्।

(२) वह प्रभु एक है, नाम उसके अनेक हैं जो, उसके गुण, कर्म और स्वभाव के द्योतक हैं। लोक में वे नाम जड़-पिण्डों और शरीरधारियों के भी हो सकते हैं, पर उनकी परम सार्थकता परमात्मा के ही संदर्भ में हैं। तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुः तदु चन्द्रमा। तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म, ता आपः स प्रजापतिः। वह एक है विद्वान् उसे अनेक नामों से सम्बोधित करते हैं—एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।

(३) श्रुति में इसी प्रभु की अनेक ऋचाओं में विस्तृत व्याख्या है—वह शुक्र है, अकाय (शरीर-रहित) है, शुद्ध है, अस्नाविर है, अव्रण है, अपापविद्ध; वही कवि, मनीषी, परिभू और स्वयंभू है (स पर्यगात्)।

(४) हम सब उसकी शाश्वत प्रजा हैं, और उस प्रजापति ने हमारे हित की दृष्टि से सृष्टि के समस्त पदार्थ विरचे हैं, तथा हमारे कल्याण के लिए उसने वेद का ज्ञान भी दिया है—

शाश्वतीभ्यः समाभ्यः अर्थान् व्यदधात् । परमात्मा की सत्ता में तो विश्वास हो, किन्तु उसकी सृष्टि के प्रति आस्तिक भावना न हो तो ऐसी आस्तिकता, नास्तिकता के तुल्य ही मानी जाएगी। सृष्टि के प्रति आस्तिक भावना का अभिप्राय यह है कि सृष्टि में क्रम, नियमानुकूलता और प्रयोजन है—न तो सृष्टि असम्बद्ध है, न प्रयोजनहीन । सृष्टि की परिवर्तनशीलता प्रभु के अनुशासन में है, अतः यह जगत्यांजगत् ईशावास्य है (ईशावास्यमिदं सर्वम्) । इस जगत् में प्रभु की परमोत्कृष्ट कला अभिव्यक्त है । कला प्रभु की है, चित्रपट शाश्वत प्रकृति का उपादानत्व है, और इसका प्रयोजन शाश्वत रहने वाले तुच्छ जीवों के निमित्त है, जिसको लोग कभी-कभी भूल से व्यवहार-जगत् कहते हैं। यह यथार्थ है और परमार्थ सिद्धि के निमित्त है। सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात्, स विद्यात् ब्राह्मणं महत् । यह जगत् न मिथ्या है, न स्वप्न, इसकी सप्रयोजन यथार्थता है, और स्वतः ब्रह्म ही इस जगत् का निमित्त कारण है, 'जन्माद्यस्य यतः (ब्रह्मसूत्र १।१।२), उसी की सर्वज्ञता और सर्वव्यापकता से जगत् का उद्भव हुआ है।

(५) वह आस्तिकता अधूरी है, जिसमें प्रभु को ज्ञान का आदि स्रोत न माना जाये। प्रभु के संदर्भ से ही वेदान्त के प्राचार्य ने "शास्त्रयोनित्वात् (ब्रह्मसूत्र १।१।३) सूत्र द्वारा ब्रह्म को वेद या श्रुति का मूल स्रोत प्रतिपादित किया। तस्माद्‌ यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे आदि श्रुति वाक्य हमें इस ओर ही प्रेरणा देते हैं; प्रभु ने अपनी सृष्टि के पशु, पतंग, पक्षी, कीटादिकों को नैसर्गिक ज्ञान दिया, और मनुष्य को इन सबमें श्रेष्ठ मानकर इसे श्रुति के ज्ञान से सम्पन्न किया। उसे विपुल स्वतंत्रता दी कि वह श्रुति के आधार पर शास्त्रों का विकास

करे और इस विकास द्वारा अभ्युदय और निःश्रेयस (वैशेषिक दर्शन) दोनों की उपलब्धियाँ करे।

(६) परमात्मा जिस प्रकार सृष्टि और श्रुति का निमित्त-कारण है और वह जिस प्रकार जगत् और ज्ञान का मूल बिन्दु है, उसी प्रकार परमात्मा स्वयं भद्र, सत्याचरण, सत्य-व्यवहार और मानवोचित समस्त नैतिकताओं का भी आदि स्रोत है। दूसरे शब्दों में जहाँ प्रभु सत्यस्वरूप पुण्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप आनन्दस्वरूप है, वह धर्मस्वरूप है, उसी को हम सम्बोधित करके कहते हैं—**तेजोऽसि, बलमसि, वीर्यमसि, ओजोऽसि, मन्युरसि सहोऽसि,** इत्यादि।

(७) प्रभु ही समस्त व्यवस्थाओं का स्वामी है और हमारे शुभा-शुभ कर्मों से परिचित है। वही अकेला यह जानता है कि हमारे द्वारा किये गये कर्म पुण्य हैं या पाप और वही हमारे भविष्य के लिए कल्याण मार्ग पर हमें ले जाने में समर्थ है (**अग्ने नय सुपथा राये**) प्रभु को छोड़कर अन्य कोई न सर्वज्ञ है, न सर्व-व्यापक और न सर्वशक्तिमान्। अतः कोई चाहे पैगम्बर हो, पीर हो, महात्मा हो, भगवान, ऋषि, योगी या अवतारी पुरुष हो, हमारे प्रारब्ध की व्यवस्था में हस्तक्षेप करने वाला नहीं हो सकता। प्रभु की व्यवस्था न्याय पर आश्रित है, उसका न्याय ही दया है, जिसमें किसी के साथ पक्षपात नहीं। दण्ड और पुरस्कार का नाम ही दुःख और सुख की अनुभूतियाँ हैं। दण्ड के परिणामस्वरूप मनुष्य की निवृत्ति दुरितों (दुश्चरित्रों) से होती है और पुरस्कार के परिणामस्वरूप मनुष्य की प्रवृत्ति भद्र कृत्यों की ओर प्रोत्साहित होती है। परमात्मा की व्यवस्था से हमें इस प्रकार सुख और दुःख दोनों की अपने कल्याण के लिए प्राप्ति होती है। जो ईश्वर की इस व्यवस्था में आस्था नहीं रखता,

वह आस्तिक कहलाने का अधिकारी नहीं है। यह व्यवस्था प्रभु के हाथ में है और इस व्यवस्था के संचालन में प्रभु को किसी के सहयोग की आवश्यकता नहीं है।

(८) वैदिक दर्शन के अनुसार जिसको हम ईश्वर कहते हैं, वह ब्रह्म से भिन्न अन्य कोई सत्ता नहीं है। वेद में ब्रह्म, इन्द्र, प्रजापति, अग्नि, आत्मन्, ईश्वर आदि पर्यायवाची एक ही प्रभु के गुणादि के कारण अनेक नाम हैं। माया की उपाधि से वशीभूत निर्गुण, अकर्ता ब्रह्म ईश्वर संज्ञा वाला बनकर सृष्टि का रचयिता और व्यवस्थाकर्ता बनता है, इस प्रकार की परिभाषा वैदिक ऋचाओं और उपनिषद् वाक्यों एवं वेदान्त-सूत्रों के द्वारा प्रतिपादित नहीं होती, ऐसी आर्य समाज की मान्यता है। इस दृष्टि से आर्यसमाज द्वारा स्वीकृत तत्त्वज्ञान नवीन वेदान्तियों की धारणाओं से भिन्न है। इसी प्रकार आर्य-समाज यह स्वीकार नहीं करता कि ईश्वर ही अविद्या से ग्रसित होकर जीव की संज्ञा धारण करता है। इस प्रकार निम्न दो समीकरण जो नवीन वेदान्तियों को मान्य हैं वैदिक तत्वज्ञान से सुस्पष्ट नहीं होते —

(क) ब्रह्म + माया = ईश्वर

(ख) ईश्वर + अविद्या = जीव

आर्यसमाज द्वारा मान्य तत्त्वज्ञान, जिसकी पुष्टि न्याय-वैशेषिक आदि षड् दर्शनों से होती है, तीन अनादि अनन्त सत्ताओं में विश्वास रखता है—

(१) ईश्वर जो सर्वव्यापक है और सृष्टि का निमित्त कारण है।

(२) प्रकृति, जो सत्व, रजस् और तमस् की साम्यावस्था

में अव्यक्त है। सृष्टि-रचनाओं में उपादान-कारण है, इसके उपादानत्व पर प्रभु की कला प्रस्फुटित होती है।

(३) अणु-परिमाण से भी सूक्ष्म अनन्त संख्या वाले जीव, जिनके लिए समस्त सृष्टि की रचना है और जो पंचकोशों से युक्त शरीर-तंत्र के माध्यम से जन्म और मृत्यु के चक्र में आते-जाते हैं और इन जीवनों द्वारा कर्तृत्व और भोक्तृत्व की सार्थकता उपलब्ध करते हैं। ये अविद्या के विनाश और सम्यक् ज्ञान की उपलब्धि करके मुक्ति या अमरत्व को प्राप्त करते हैं और तब पंचकोशों के पाशों से मुक्त होकर अपनी दिव्य शक्ति से प्रभु का सामीप्य और आनन्द प्राप्त करते हैं। इस अर्जित मुक्ति का प्रारम्भ होता है, तो इसका फिर अन्त भी होता है और यह मुक्ति सीमित कर्मों का फल होने से असीम भी नहीं हो सकती और इसलिए सर्ग के आरम्भ में विशेषतया और सर्ग के मध्य काल में भी विशेष रूप से मुक्तात्मायें फिर से जीवन और मृत्यु के चक्र में आती हैं।

स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज के जो दस नियम संघटन के व्यवहार के लिए निर्धारित किये; उसमें आस्तिकता सम्बन्धी निम्न नियम हैं :

(१) सब सत्य-विद्या और जो पदार्थ-विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

(२) ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकर, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर-अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करना योग्य है।

आत्मा अणु है, परमात्मा विभु है अर्थात् हमारे शरीर के भीतर-बाहर सभी जगह विद्यमान् है। जीवात्मा का स्थान मस्तिष्क के उस केन्द्र-बिन्दु पर है, जहाँ पर समस्त ज्ञानेन्द्रियों द्वारा भेजी गयी संवेदनायें संकलित और समाहृत होती हैं और जहाँ से आत्मा द्वारा भेजी गयी समस्त प्रेरणायें कर्मेन्द्रियों को मिलती हैं। यह बिन्दु उपनिषद् के शब्दों में विदृति में है, मस्तिष्क में स्थित इस स्थान का नाम आवसथ है। मन भी इसी बिन्दु से कार्य करता है। जाग्रत अवस्था में इसी स्थान को चाक्षुष कहा गया है। (चाक्षुष का अभिप्राय दाहिनी आँख का गोलक नहीं, यह वह बिन्दु है, जहाँ समस्त प्रत्यक्षों का एकीकरण होता है)। स्वप्नावस्था में इन्द्रियों से सम्बन्ध टूट जाता है और इसलिए आत्मा को केवल मन का समीपस्थ माना जाता है। सुषुप्ति में मन की वृत्तियों से भी सम्बन्ध टूट जाता है। अब आत्मा हृदय में रहता है। यह हृदय रुधिर प्रवाह का कपाटद्वार नहीं है। यह भी मस्तिष्क में लगभग वहीं है, जहाँ प्रत्यक्ष का केन्द्रबिन्दु था, मन भी था, केवल उन संयोजी पाशों से सुषुप्ति में सम्बन्ध टूट जाता है, जिनके फिर से संयोजन होने पर मन और इन्द्रियाँ फिर आत्मा की प्रेरणा से काम करने लगेंगी।

सुषुप्ति, समाधि और मुक्ति अवस्था में आत्मा को ब्रह्म या परमात्म-तत्व का साहचर्य प्राप्त होता है। कपिलमुनि के शब्दों में इसी का नाम ब्रह्मरूपता है। इन तीनों अवस्थाओं के शरीर-सम्बन्ध से (बहिरंग वृत्तियों से) छुटकारा मिलता है।

प्रभु का प्यार ही मनुष्य को आवागमन के बन्धनों से मुक्त कर सकता है। प्रभु-प्रसाद से ही ज्ञान और आनन्द की प्राप्ति

होती है। जीवन की स्वच्छता ही प्रभु-प्रसाद की पात्रता प्राप्त कराती है। इस स्वच्छता के लिए यम और नियमों का पालन करना अनिवार्य है अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरि-ग्रह ये पाँच यम प्रभु-प्रसाद के लिए अनिवार्य और महाव्रत हैं। तप, स्वाध्याय, शौच, संतोष और ईश्वर-प्रणिधान इसी सन्दर्भ में नितान्त आवश्यक हैं। ये पांच नियम कहलाते हैं।

जीवन के कलुष को धोने के लिए और प्रभु-प्रसाद की प्राप्ति के लिए प्रार्थना, स्तुति और उपासना आस्तिकता के आवश्यक अंग बन जाते हैं—ये साधन हैं। स्वामी दयानन्द ने प्रार्थना, स्तुति और उपासना क्या है, इनकी इस प्रकार व्याख्या की है—'स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण-कर्म-स्वभाव से अपने गुण-कर्म-स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म में मेल और उसका साक्षात्कार होना।"

स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में स्वामी दयानन्द स्तुति, प्रार्थना और उपासना को और स्पष्ट करके इस प्रकार लिखते हैं :—

स्तुति—गुणकीर्तन, श्रवण और ज्ञान होना, इसका फल प्रीति आदि होते है।

प्रार्थना—अपने सामर्थ्य के अनन्तर ईश्वर-सम्बन्ध से जो विज्ञान आदि प्राप्ति होते हैं उनके लिए ईश्वर की याचना करना और इसका फल निरभिमान आदि होता है।

उपासना—जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं वैसे अपने को करना, ईश्वर को सर्वव्यापक, अपने को व्याप्य जानकर ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है, ऐसा

निश्चय योगाभ्यास से साक्षात् करना उपासना कहलाती है। इसका फल ज्ञान की उन्नति आदि है।

स्वामी दयानन्द इसी प्रसंग में सगुण-निर्गुण स्तुति प्रार्थनोपासना की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—"जो-जो गुण परमेश्वर में हैं, उनसे युक्त और जो-जो नहीं हैं, उनसे पृथक् मानकर प्रशंसा करना सगुण-निर्गुण स्तुति, शुभ गुणों के ग्रहण की इच्छा और शेष छुड़ाने के लिए परमात्मा का सहाय चाहना सगुण-निर्गुण प्रार्थना और सब गुणों से सहित, सब दोषों से रहित परमेश्वर को मानकर, अपने आत्मा को उसके और उसकी आज्ञा के अर्पण कर देना सगुण-निर्गुणोपासना होती है।

इस प्रकार स्तुति, प्रार्थना और उपासना तीनों द्वारा जीवन निर्मल और उदात्त बनता है और प्रभु के गुण-कर्म-स्वभाव के प्रति प्रीति बढ़ती है।

सांख्य-दर्शन में कपिलमुनि का ज्ञानमार्ग और योग-दर्शन में प्रतिपादित अष्टांगयोग के मार्ग से प्रभु के प्रति प्रीति बढ़ती और समाधि और मुक्ति के प्रति प्रेरणा मिलती है। मुक्ति और समाधि जन्म-जन्मान्तरों के तप, ज्ञान और साधना के परिणामों से सिद्ध होती है। मुक्ति का मार्ग ही दूसरे शब्दों में निःश्रेयस का मार्ग है। यह कोई साधारण, सरल, सहज और सस्ता मार्ग नहीं है–उपनिषद् के शब्दों में क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति, अर्थात् छुरे की धार पर चलता है। प्रभु की कृपा की बड़ी आवश्यकता है—"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्"। पांडित्य-मात्र से इस आत्मतत्व की प्राप्ति नहीं होती, प्रभु द्वारा जिसका वरण होता है, उसके प्रति प्रभु

स्वयं अपने स्वरूप को अभिव्यक्त कर देते हैं। प्रभु का यह स्वरूप सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप है, जो इन्द्रियों की पहुँच से परे है—न तत्र चक्षुर्गच्छति, न वाग्गच्छति, नो मनो न विद्मो न विजानीमः। भौतिक शरीर से रहित वह परमात्मा-सत्ता शरीरधारी पुरुष से सर्वथा भिन्न है—अपाणिपादो जवनो गृहीता, पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।

———

प्रथम प्रवचन

श्रुति-वचन

१

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥
(मनु० २।२०)

एतत् । देश-प्रसूतस्य । सकाशाद् । अग्रजन्मनः । स्वम् । स्वम् । चरित्रम् । शिक्षेरन् । पृथिव्याम् । सर्वमानवः ॥

"आर्य नाम उत्तम पुरुषों का है, और आर्यों से भिन्न मनुष्यों का नाम दस्यु है।

जितने भूगोल में देश हैं, वे सब इसी देश (अर्थात् आर्यावर्त्त) की प्रशंसा करते और आशा रखते हैं कि पारसमणि पत्थर तो सुना जाता है, यह बात तो झूठी है, परन्तु आर्यावर्त्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिसको लोहेरूप दरिद्र विदेशी छूने के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।"—दयानन्द

"इसी आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुए ब्राह्मण अर्थात् विद्वानों से भूगोल के मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, दस्यु, म्लेच्छ आदि सब अपने-अपने योग्य विद्या-चरित्रों की शिक्षा और विद्याभ्यास करें।"
—दयानन्द

२

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद् भद्रं तन्न आ सुव ॥
(यजु० ३०।३)

विश्वानि । देव । सवितः । दुरितानि । परा । सुव । यद् । भद्रम । तत् । न । आ । सुव ॥

अर्थ – हे (सवितः) सृष्टि-उत्पादक परमात्मन्, देव) ज्ञान-वान् सुखों के दाता प्रभो ! नः) हमारे (विश्वानि) समस्त (दुरितानि) दुख, दुर्गुण, दुश्चरित्र (परा, सुव) दूर कर दीजिये। (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारक है (तत्) वह सब हमको (आ, सुव) प्राप्त कराइये।

३

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् । (यजु० ३६।३)

ओ३म् । भूः । भुवः । स्वः । तत् । सवितुः । वरेण्यम् । भर्गः । देवस्य । धीमहि । धियः । यः । नः । प्रचोदयात् ।

अर्थ—(ओ३म्) परमातमा का निजी नाम (अ+उ+म्)। (भूः) प्राणों का प्राण, जन्म का देने वाला, (भुवः) पालन करने, और बराबर परिवर्त्तन लाकर वृद्धि करने वाला, दुखों को भगाने वाला; (स्वः) सुखों का स्रोत। (सवितुः) जगत् उत्पन्न करने वाले सविता प्रभु (देवस्य) ज्ञानस्वरूप परमात्मा के (तत्) उस (वरेण्यं) वरेण्य, वरणीय, अतिश्रेष्ठ (भर्गः) भर्ग या तेज को (धीमहि) हम सब धारण करें। (यः) जो परमात्मा (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (सत्-असत् की पहिचान करने वाली प्रतिभा को) (प्रचोदयात्) प्रेरित करे।

———

ईश्वरीय ज्ञान

नैरोबी आर्य समाज के ७४वें वार्षिकोत्सव के लिये आर्य प्रतिनिधि सभा, केन्या, एवं पूर्वी अफ्रीका के अध्यक्षश्री हरबंस राय शाही ने मुझे आमन्त्रित किया। वार्षिकोत्सव का प्रारम्भ १७जुलाई से हुआ—यजुर्वेद पारायण यज्ञ से। पं० बंशीधर जी यज्ञ के ब्रह्मा हैं और प्रतिदिन प्रातः और सायं के यज्ञ के अलग-अलग परिवार यजमान हैं। मैं नैरोबी १० तारीख को पहुँच गया था (१९७७)। वार्षिकोत्सव प्रारम्भ होने से पूर्व मैंने आर्य समाज द्वारा सञ्चालित कतिपय पाठशालाओं में बालक-बालिकाओं से भेंट की। आजकल नैरोबी आर्य समाज, एवं स्त्री आर्य समाज के तत्त्वावधान में छः संस्थायें शिक्षा का काम कर रही हैं—आर्य नर्सरी स्कूल, आर्य गर्ल्स प्राइमरी स्कूल, आर्य बॉयज सेकेण्डरी स्कूल, आर्य गर्ल्स सीनियर स्कूल आर्य सेकेण्डरी स्कूल और दयानन्द होम नाम से केन्या के अफ्रीकी बालकों का छोटा-सा आश्रम। मैं आर्य समाज के सत्संग में भी सम्मिलित हुआ, और स्त्री-आर्य समाज के सत्संग में भी।

सायंकाल के यज्ञ के बाद प्रतिदिन मैं पौन घण्टे का प्रवचन दे रहा हूँ। १७ तारीख को पहले प्रवचन में मैंने उपस्थित आर्य परिवारों को आर्शीवाद दिया और कहा, कि जब मैं अपने देश से अफ्रीका की यात्रा के लिए चला, तो सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री रामगोपाल जी और मंत्री श्री सच्चितानन्द शास्त्री जी हवाई अड्डे पर विदाई देने आये थे।

उन लोगों ने मेरे द्वारा समस्त आर्य परिवारों और आर्य संस्थाओं की ओर से केन्या के आर्य परिवारों के लिए शुभकामनायें भेजी हैं। मेरी केन्या की यह चौथी यात्रा है। जब यहाँ आता हूँ तो कुछ पुराने मित्रों की याद आ जाती है, जो आर्य समाज की सेवा करते थे, पर आज वे हमारे बीच में नहीं हैं। इस वर्ष जब आया, तो श्री अच्छरा दास जी की मुझे याद आती रहती है। वे मेरी पुरानी यात्राओं में मेरे साथ केन्या की विभिन्न आर्य समाजों में और उगाण्डा की आर्य समाजों में गये थे। पूर्वी अफ्रीका में उन्होंने आर्य समाज का बड़ा काम किया। हर्ष की बात है कि उनके सुपुत्र श्री एस० के० विनायक जी इस समय आर्य समाज नैरोबी के मन्त्री हैं। शिक्षा क्षेत्र में उनका अच्छा अनुभव है। आशा है कि वे और उनका परिवार आर्यसमाज के कार्य में यशस्वी होगा। इस वर्ष जब मैं आया, तो आते ही मैंने जस्टिस चानन सिंह के अकस्मात् स्वर्गवास का समाचार सुना। वे छुट्टियाँ मनाने के लिए २७ जून को लंदन होते हुए कनाडा गए थे, और वहीं २ जुलाई को हृदय-पीड़ा के कारण उनका स्वर्गवास हो गया। जस्टिस चाननसिंह ने आर्य समाज नैरोबी का इतिहास लिखा है। वह छपना चाहिए, और उनका निजी का पुस्तकालय बड़ा सम्पन्न था। आर्य समाज नैरोबी को उसकी यथोचित व्यवस्था करनी चाहिए। उनकी स्मृति में यह पुस्तकालय भारतीयसाहित्य के अनुशीलन का अच्छा केन्द्र बन सकता है।

नैरोबी आर्य समाज के परिवार बड़े प्यार से वेद मन्त्रों का पाठ करते हैं, इसके लिए इन सबको बधाई। आस्तिकता का अर्थ है—ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखना, और उसके दिए हुए ज्ञान में आस्था रखना। परमात्मा ने ज्ञान छिपाकर

नहीं रखा, सृष्टि के कण-कण में उसने मनुष्य के कल्याण के लिए अपना ज्ञान बिखेर रखा है। वैज्ञानिक इसी ज्ञान का अनुशीलन करके मनुष्य के वैभव को बढ़ा सके हैं। परमात्मा ने इस ज्ञान के अतिरिक्त एक और ज्ञान दिया, जिसके आधार पर हम ज्ञान-विज्ञान को विकसित कर सके—वह ज्ञान वेदों के रूप में आदि मानव को मिला। मनुष्य का यह स्वभाव है, कि वह बिना सिखाये आगे नहीं बढ़ सकता। कोई सिखाने वाला मिल जाये, तो शीघ्र उन्नति करता है। केन्या और टैंजानिया में दो लाख वर्ष से आदमी रहता आया है—पर इसने सभ्यता के क्षेत्र में क्यों नहीं उन्नति की ? जो कुछ रंग-ढंग सीखा, अरबवासियों के सम्पर्क से सीखा, और पिछले तीस वर्षों में इसने भारतीयों और यूरोपवासियों के सम्पर्क से, और उनके सिखाने से सीखा। अगर मनुष्य को वेदों का ज्ञान न मिला होता, तो वह भी लाखों वर्ष अफ्रीका की जंगली जातियों के समान जंगलों में बिता देता और कुछ भी सीख न पाता। प्रभु की कृपा थी, कि आदि मनुष्यों को वेदों का ज्ञान मिला, जिसके आधार पर मनुष्य ने सभ्यता और संस्कृति का विकास किया।

क्या यह प्रसन्नता की बात नहीं है कि नैरोबी में बैठे हुए उन्हीं मन्त्रों का उसी प्रकार पाठ कर रहे हैं, जिस प्रकार हमारे पूर्वज ऋषि हजारों वर्ष पहले करते थे। यह दुनिया का बड़ा चमत्कार है कि हमने ऋग्वेद के दस हजार मन्त्र कण्ठ करके सुरक्षित रखे, दो हजार मन्त्र यजुर्वेद के, दो हजार सामवेद के और छः हजार मन्त्र अथर्ववेद के। वेद तो हमें तब मिले थे, जब हमें लिखना भी न आता था। हमारे पास न कागज था, न स्याही, और न छापेखाने। आप अनुमान तो करें कि किस तपस्या से मनुष्यों ने वेदों को सुरक्षित रखा। बाइबिल

दो हजार वर्ष की है और कुरान १४०० वर्ष का। जब दुनिया में कोई ज्ञान न था। हिमालय के आस-पास रहने वाले ऋषि वेद मन्त्रों का पाठ करते थे, और वे वेदों का ज्ञान लेकर संसार में फैले। आज भी हमारे पंजाबी भाई भारत से केन्या आये, और वे अपने साथ वेद के मन्त्र भी लाये—गायत्री मन्त्र भी और यज्ञ करने की विधि भी लाये। ये केन्या से निकलकर लंदन और कनाडा जा रहे हैं, वहाँ भी वे इन मन्त्रों को ले जा रहे हैं। यह कोई नयी बात नहीं है। पुराने आर्यों ने भी ऐसा ही किया था। क्या आपको मनु महाराज का श्लोक सुनाना पड़ेगा—एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वंस्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः। पुराने विद्वान् पंडित आचार-व्यवहार की शिक्षा देने दूर-दूर तक पृथ्वी भर में गये भी। आज भी एक करोड़ के करीब भारतीय भारत से बाहर विदेशों में गये हुए हैं। समुद्र यात्रा करना अब कोई पाप नहीं समझता। यात्रा से लौटने पर कोई प्रायश्चित नहीं करता। आर्य समाज और ऋषि दयानन्द ने हमें यह शिक्षा दी कि वैदिक धर्म तो पृथ्वी मात्र के व्यक्तियों के लिए है। सब में इसका प्रचार करो। आपने अपने बच्चों को शिक्षा-दीक्षा के लिए नैरोबी स्कूल खोले। आज इन स्कूलों में आधे के लगभग केन्या के अफ्रीकी भी बढ़ रहे हैं। आपकी कन्या पाठशालाओं में अफ्रीकी अध्यापिकायें भी हैं। इन सबको मालूम होना चाहिये कि आपका धर्म सबके लिए है।

मुझे अच्छा लगा कि आप सब श्रद्धा से मन्त्रों को पढ़ते हैं। मन्त्रों में बातें साधारण शब्दों में कही गयी हैं, पर उनके भाव तो बड़े, गहरे हैं। इनके भावों को आप समझेंगे, तो वस्तुतः लाभ होगा। आप मन्त्रों में पढ़ते हैं कि दुरितानि परा सुव, यद् भद्रं तन्न

आ सुव। मन्त्र पढ़ने मात्र से काम न चलेगा, आपको समझना पड़ेगा कि आपके दुरित क्या हैं, और आपके लिए भद्र क्या हैं। जब मैं बच्चा था तब भी मैं इसी मन्त्र को पढ़ता था, और आज जब ७२ वर्ष का बुढ्ढा हूँ तब भी इसी को पढ़ता हूँ। पर बचपन के मेरे दुरित-दुःख और दुर्गुण, दूसरे थे, जवानी के दुःख और दुर्गुण और बुढ़ापे के दुःख और दुर्गुण दूसरे हैं। मन्त्र वही है, मन्त्र पाठ भी वही है, पर मन्त्र पढ़ने वाले को मन्त्र पढ़ने से पहले समझना चाहिये कि वह ईश्वर से क्या माँग रहा है। ईश्वर के सामने ब्लेंक-चेक देने से काम न चलेगा। ईश्वर हँसेगा, कि हे मूर्ख, रटी-रटायी चीज तू माँग रहा है—पहले पता तो चला कि मेरा इस समय दुरित क्या है, और भद्र क्या है। यों ही बिना समझे मन्त्र पढ़ने से दुःख या दुर्गुण दूर होंगे, और न भद्र पुण्य या सुख आपको मिलेंगे। आप चुपके बैठकर अकेले में ईश्वर से प्रार्थनायें सोच समझ कर किया करें। जब तुम अपनी प्रार्थनायें, भावनाओं के साथ सच्चे हृदय से करोगे, और फिर गायत्री मन्त्र द्वारा कहोगे कि धियो यो नः प्रचोदयात्, तब प्रभु तुम्हारी बुद्धि जागृत करेगा और तुम्हारी प्रार्थना सफल होगी। परमात्मा के देने के तरीके निराले हैं, वह बाहर या ऊपर से वर्षा नहीं करता—सच्चे हृदय से माँगी हुई चीज वह देता है, इस तरह कि तुम्हारी शक्ति को भीतर से प्रेरणा देता है, और तुम इस योग्य बन जाते हो कि जो तुम माँगते हो, वह स्वयं प्राप्त कर लेते हो। ईश्वर करे, कि प्रभु का सच्चा प्यार आप सब में जागृत हो, और ईश्वर का आशीर्वाद आप सबको मिले।

———

श्रुति-वचन

१

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानीं द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्। (अथर्व० १९।७१।१)

स्तुता । मया । वरदा । वेदमाता । प्र । चोदयन्ताम् । पावमानीम् । द्विजानाम् । आयुः । प्राणम् । प्रजाम् । पशुम् । कीर्तिम् । द्रविणम् । ब्रह्मवर्चसम् । मह्यम् । दत्त्वा । व्रजत । ब्रह्मलोकम् ।

अर्थ—(वरदा) वर देने वाली (वेदमाता) वेदवाणी (मया) मुझसे (स्तुता) स्तुत की गयी है। इस (पावमानी) पवित्र करने वाली वेदवाणी को आप (द्विजानाम) द्विजों में समस्त विद्याभिलाषियों में (प्र चोदयन्तां) आगे बढ़ावें, प्रचलित करें। (मह्यं) मुझको (आयुः) दीर्घ जीवन, (प्राणं) प्राण-शक्ति, (प्रजां) सन्तान, (पशु) पशु, (कीर्तिं) यश, (द्रविणं) धन, (ब्रह्मवर्चसं) ब्रह्म अर्थात् वेद विद्या का तेज (दत्त्वा) देकर (ब्रह्मलोकं) वेद-विद्याओं के समाज में या ईश्वर के साक्षात्कार में (व्रजत) पहुँचाइये।

२

पुनस्त्वाऽऽदित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथ यज्ञैः ।
घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥
(यजु० १२।४४)

पुनः । त्वा । आदित्याः । रुद्राः । वसवः । सम् इन्धताम् । पुनः । ब्रह्माणः । वसुनीथ । यज्ञैः । घृतेन । त्वम् । तन्वम् । वर्धयस्व । सत्याः । सन्तु । यजमानस्य । कामाः ॥

अर्थ—हे (वसुनीथ) धनों के दाता, (पुनः) फिर (त्वा) आपको (आदित्याः) आदित्य, (रुद्राः) रुद्र, (वसवः) सभी वसु (ब्रह्माणः) वेदवेत्ता (यज्ञैः) यज्ञों के द्वारा (समिन्धतां) भली प्रकार प्रकाशित करें, प्रज्वलित करें। (त्वं) तुम्हारे (तन्वं) शरीर को (घृतेन) घृत आदि से (वर्धयस्व) बढ़ावें। (यजमानस्य) यजमान की (कामः) कामनायें (सत्याः) सच्ची या पूरी (सन्तु) होवें।

३

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति ।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥
(अथर्व० १०।८।३२)

अन्ति । सन्तम् । न । जहाति । अन्ति । सन्तम् । न । पश्यति । देवस्य । पश्य । काव्यम् । न । ममार । न । जीर्यति ।

अर्थ—(अन्ति) समीप में (सन्तं) वर्त्तमान या विद्यमान है,

किन्तु वह परमदयालु प्रभु हमें (न) नहीं (जहाति) छोड़ता। दूसरा कृतघ्न मैं मूर्ख ऐसा हूँ कि (अन्ति) समीप में (सन्तं) विद्यमान हूँ, किन्तु उस प्रभु को (न) नहीं (पश्यति) देखता। (देवस्य) उस दिव्य प्रभु के (काव्य) काव्य को (पश्य) देख, जो (ममार) मरता (न) नहीं, और (न) न (जीर्यति) पुराना पड़ता है।

———

ईश्वर की व्यवस्था

वेद-पारायण यज्ञ का दूसरा दिन १८ जुलाई को था। वेद-पारायण यज्ञ के लिए हवन-सामग्री भारतवर्ष से आती है। वेद-पारायण यज्ञ का जो परिवार यजमान बनता है, वह यज्ञ के व्यय के निमित्त २०० शिलिंग देता है। भारतवर्ष में गाय के दूध का घी कम मिलता है. पर इस देश में तो गाय के दूध के मक्खन से ही घी तैयार करते हैं। तीन किलो घी का दाम ५० शिलिंग के लगभग है। केन्या देश के शिलिंग हमारे १ रुपये से कुछ अधिक मूल्य का है। इस दृष्टि से परमशुद्ध घी का दाम २० रुपया किलो पड़ा, अर्थात् हमारे देश से घी यहाँ सस्ता है. विशेषतया इस दृष्टि से तो और भी सस्ता क्योंकि यहाँ लोगों का वेतन हमारे देश की अपेक्षा ४-५ गुना तो अवश्य है। हवन सामग्री बाहर से आने के कारण तेज पड़ती है—१८-२० रुपये किलो। प्रातःकाल यज्ञ के बाद प्रत्येक व्यक्ति बादाम-मिश्रित दूध पीता है (कुछ लोग चाय भी) और प्रसाद के रूप में मिष्ठान्न।

यजमान की ओर से आगन्तुक व्यक्तियों को एक अध्यात्म प्रसाद भी दिया जाता है। साइक्लोस्टाइल किया हुआ एक पृष्ठ जिस पर वेद मन्त्र और उनके आधार पर बने हुए एक या दो गाने। पं० बन्शीधर जी स्वयं ये गाने कविता-बद्ध करते हैं, कभी-कभी पं० सत्यकाम जी विद्यालंकार की रचनायें प्रस्तुत करते हैं। ये गाने देवियाँ अच्छे स्वर से गाती हैं। यजमान को आशीर्वाद 'स्तुतामया वरदा वेदमाता' इस मन्त्र के द्वारा दिया

जाता है। पिछले वर्षों में 'सत्या. सन्तु यजमानानां कामाः' से देते थे। मेरा अपना विचार है कि 'स्तुतामया वरदा वेदमाता' वाला मन्त्र अधिक आशीर्वादात्मक है, जिसमें आयु, पशु, बल, कीर्ति, ब्रह्मवर्चस् आदि की कामना की गयी है।

विदेशों में यदि यज्ञ प्रचलित करना है, तो भारतवर्ष से लायी गयी हवन-सामग्री का मोह छोड़ना पड़ेगा। अफ्रीका के वनों में अनेक प्रकार की वनस्पतियाँ और सुगन्धित औषधियाँ हैं। मेरा सुझाव है, कि पूर्वी अफ्रीका के व्यवसायी भारतीयों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। पूर्वी अफ्रीका में गुजराती हिन्दुओं के घरों में भी कभी-कभी हवन होते है, पर वे बहुधा तिल, चावल, और जौ से अपने को सन्तुष्ट कर लेते हैं। सीडर लकड़ी का बुरादा, नारियल के खोपड़े के अवशेष, लवंग की जहाँ खेती होती है, वहाँ लवंग पौधे के विविध अंश, गुलाब और इसी प्रकार के अन्य फूल, और पाइरीथ्रम पौधे से हवने सामग्री तैयार की जा सकती है। पाइरीथ्रम [पाइरीथ्रम] पौधा केन्या के पहाड़ी स्थानों पर विशेष रूप से होता है। इसके फूलों का रंग सफेद है। इस पौधे में ऐसा रासायनिक द्रव्य है जो कीटाणुओं को नष्ट करने के निमित्त काम आता है, और यह द्रव्य पशुओं और मनुष्यों के लिए निरापद है। इस देश में इसके व्यापार का अच्छा धन्धा है और कीटनाशक गुणों के कारण यह ब्रिटेन और अमरीका भेजा जाता है। साल में ८-९ मास इसकी फसल रहती है।

आज के यज्ञ की यह विशेषता थी कि इस यज्ञ के यजमान युवक थे। "दयानन्द होम" के केन्या-वासी १० अफ्रीकी बालक भी यज्ञ में भाग ले रहे थे और आहुति डाल रहे थे। एक दो मन्त्र भी इनको याद हैं। यह ठीक है कि अभ्यास न

होने के कारण अन्य विदेशियों के समान अफ्रीकी बच्चों को मन्त्रों का पाठ करना कठिन प्रतीत होता है। इसके लिए तो अंग्रेजी भाषा भी विदेशी है, पर पिछले ३०-४० वर्षों में अफ्रीकी लोग भारतीयों की अपेक्षा अच्छी अंग्रेजी बोलना सीख गए हैं। दक्षिणी अफ्रीका में युवक भारतीयों और अफ्रीका वासियों के उच्चारण इंग्लैण्ड के आदर्श पर हैं। जो अफ्रीकी अरब के मुसलमानों के सम्पर्क में आये हैं, उनके अरबी उच्चारण भी बुरे नहीं हैं। अतः अभ्यास दिलाया जाये तो इस देश के युवक भी भारतीय भाषाओं का, और वेद मन्त्रों का भी अच्छे ढंग से उच्चारण कर सकते हैं। खेद यही है, कि भारतियों ने उनकी भाषा तो सीख ली किन्तु अपनी भाषाओं के सीखने का अवसर इन्हें न दिया।

यज्ञ की समाप्ति पर मैंने अंग्रेजी के कुछ वाक्यों में आज के अफ्रीकी यजमानों को आशीर्वाद दिया। युवकों और युवतियों कों आर्य समाज के सम्पर्क में आने का आग्रह किया।

आशीर्वाद के बाद मैंने प्रवचन आरम्भ किया। आस्तिकता का अर्थ मैंने बतलाया था, कि ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखना और ईश्वर के दिए हुए ज्ञान में विश्वास रखना। आज मैं आस्तिकता के सम्बन्ध में तीसरी बात बताता हूँ—वह है ईश्वर की व्यवस्था में विश्वास रखना। हम न अपनी मरजी से संसार में आये, और न हम अपने विषय में ही ज्यादा जानते हैं। अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्—वह हमारा प्रभु ही हमारे सब कर्मों को जानता है। कर्म तो हम करते हैं, फलों की व्यवस्था वह करता है। माँ को तो पता ही नहीं, कि उसकी कोख में कौन बालक जन्म ले रहा है, वह इतने से ही प्रसन्न है कि वह माता बन रही है। ईश्वर की व्यवस्था को जो नहीं

मानता है, वह दुःख पाता है। किसी की हमारे घर में मृत्यु हो जाए, तो हम ईश्वर को गाली देने लगते हैं। जब तक धन-दौलत मिलती रही, हम प्रसन्न हैं—पर सब कुछ चला जाने पर भी जो ईश्वर को प्यार करे, और उसकी दया में विश्वास करे, तब समझना कि वह सच्चा आस्तिक है। मेरे एक मित्र डिस्ट्रिक्ट जज थे—उनका होनहार बेटा मर गया—वे विचलित हो उठे, वे धार्मिक प्रकृति के थे। साधु-सन्तों को खिलाते-पिलाते और पूजा-पाठ करते थे वे बेटे के मरने पर उलाहना देने लगे, कि ईश्वर ने उनकी भावनाओं का आदर नहीं किया—नास्तिकों के बेटे मरें, तो ठीक, पर आस्तिकों के घरों में भी अगर होनहार युवकों की मृत्यु हो जाए, तो यह कौन-सा न्याय है!! हम ईश्वर की व्यवस्था को नहीं समझते और तब हम पागल हो उठते हैं।

इस शरीर में मैं हूँ, और मेरा ईश्वर है। मैं थोड़ा-सा करता हूँ, वह बहुत-सा करता है। मैं तो केवल कौर उठा कर मुँह में रख लेता हूँ—रात का खाना मुँह में डाला और सो गया। पर जब मैं सो जाता हूँ, मेरा प्यारा रसोइया, अर्थात् मेरा प्रभु मेरे शरीर की सारी व्यवस्था करता है—जो दाल-भात मैंने खाया, उससे हजारों चीजें शरीर में बनाता है और शरीर के विभिन्न अंगों में पहुँचाता है—कुछ आँख में, कुछ हड्डियों में, कुछ माँस में। उसकी व्यवस्था से ही हम चलने-फिरने लायक होते हैं। हम अपने प्रभु को भूल जाते हैं, वह हमें कभी नहीं भूलता। इसीलिए तो अथर्ववेद में कहा है—**अन्ति सन्तं न जहाति, अन्ति सन्तं न पश्यति।** एक तो वह है जो पास में रहता और हमें कभी नहीं छोड़ता और एक हम हैं, कि उसके पास में हैं, पर उसकी ओर देखते भी नहीं। ईश्वर का कितना उपकार हमारे ऊपर है, उसकी इस व्यवस्था को हम भूल जाते हैं।

यज्ञ और सत्संग

आप लोगों ने यज्ञ किया है। यज्ञ का अर्थ ही है, परमात्मा की व्यवस्था को समझाना और संसार के हित सारे काम करना। फैक्ट्री चलाना भी यज्ञ है—आप दूसरे अनेक परिवारों को रोटी कमाने का धन्धा देते हैं। स्कूल खोलना भी यज्ञ है, और गरीबों की सेवा करना भी यज्ञ है। लोग कहते हैं, कि आर्य समाज के सत्संगों में क्यों जायें, क्यों सन्ध्या-हवन करें। जो ऐसा प्रश्न करते हैं, वे समझते नहीं हैं। धर्म-कर्म व्यवहार की चीज है। कहने मात्र से हम सच्चे नहीं बन जाते, मानवीय सद्गुण तो हमें उगाने पड़ते हैं। मकाई की खेती करनी हो तो मक्का उगानी पड़ेगी। बीज वो आये तो मक्का का पौधा निकलेगा। इस पौधे के साथ घास-फूस भी तो उग आता है। मक्का या गेहूँ तो उगाना पड़ता है, पर घास-फूस उगाने नही पड़ते। घास-फूस के भी छोटे-छोटे बीज होते हैं, जो हवा से उड़-कर खेतों में बिखर जाते हैं, इनकी खेती नहीं की जाती। मकाई के पौधे की रक्षा के लिए इस घास-फूस को जड़ से खोद कर निकाल देना चाहिए। इसे ही खेती का निराना कहते हैं। हमारे सत्संगत भी इसी प्रकार निराई का काम करते हैं। समाज में बुराई के बीज वैसे ही बिखरे हुए कहीं से आ पड़ते हैं, हमें पता भी नहीं चलता। बुराई की शिक्षा के लिए स्कूल और कॉलेज नहीं खोलने पड़ते। हाँ, यदि बुराइयाँ घास-फूस की तरह पैदा हो जावें तो इन्हें निराना पड़ेगा। सन्ध्या, हवन, सत्संग, उपदेश दान-पुण्य और सेवा के कार्य इसी उद्देश्य से किये जाते हैं कि हमारे दुरित (दुःख, दुर्गुण और दुष्चरित्र) दूर हों, जो कुछ कल्याणमय है, वह हमें प्राप्त हो सके।

———

श्रुति वचन

१

मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु ।
मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियनक्तु मह्यम् ॥
(पारस्कर गृह्यसूत्र २।२।१६)

मम । व्रते । ते । हृदयम् । दधामि । मम । चित्तम् । अनुचित्तम् । ते । अस्तु । मम । वाचम् । एकमना । जुषस्व । बृहस्पतिः । त्वा । नियनक्तु । मह्यम् ।

अर्थ—हे शिष्य ! मैं (मम) अपने (व्रते) व्रत में (ते) तेरे (हृदय) को (दधामि) धारण करता हूँ । (मम) मेरा (चित्तं) चित्त (ते) तेरे (अनुचित्तं) चित्त के अनुकूल (अस्तु) हो । (मम) मेरे (वाचं) वाक्य को (एकमना) एक-चित्त होकर (जुषस्व) प्रीति पूर्वक सुन और पालन कर । बृहस्पति परमात्मा (त्वा) तुझको (मह्यं) मुझसे (नियनक्तु) नियुक्त या संयुक्त करे ।

[बारी-बारी से गुरू और शिष्य दोनों इस मन्त्र को दोहराते हैं ।]

२

मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु।
मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियनक्तु मह्यम् ॥

(पारस्कर गृह्यसूत्र १।८।८)

इस मन्त्र को बारी-बारी से विवाह के अवसर पर पति और पत्नी पढ़ते हैं। गुरु-शिष्य वाले मन्त्र में बृहस्पति नाम से परमात्मा का स्मरण है, पर पति-पत्नी वाले मन्त्र में प्रजापति नाम से परमात्मा का उल्लेख है। शेष सब अर्थ पहले मन्त्र के समान समझना चाहिए।

३

पत्युर्नो यज्ञ संयोगे। (पाणिनि ४।१।३३)

पतिशब्दस्य नकारादेशः स्त्रियाँ विधीयते। ङीप् प्रत्ययस्तु नकारान्तत्वादेव सिद्धः। यज्ञ संयोगे, यज्ञेन संयोगे यज्ञ संयोगः। तत्साधनत्वात्फलग्रहीतृत्वाद्वा यजमानस्य पत्नी। - **काशिका।**

पति के साथ यज्ञ कर्म में जो अधिकार-पूर्वक भाग ले उसका नाम पत्नी है।

४

तनूपाऽअग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दाऽ-
अग्नेऽऽस्यायुर्मे देहि वर्चोदाऽअग्नेऽसि
वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं
तन्मऽआपृण। (यजु० ३।१७)

तनूपा। अग्ने। असि। तन्वम्। मे। पाहि। आयुर्दा। अग्ने। असि। आयुः। मे। देहि। वर्चोदा। अग्ने। असि। वर्चः। मे। देहि। अग्ने। यत्। मे। तन्वा। ऊनम्। तत्। मे। आपृण।

अर्थ—हे (अग्ने) अग्नि स्वरूप परमात्मन्! तू (तनूपा)

शरीर का रक्षक (असि) है। (मे) मेरे (तन्वं) शरीर की। (पाहि) रक्षा कर। (अग्ने) हे अग्ने ! तू (आयुर्दा) पूर्णायु का देने वाला (असि) है, (मे) मुझे (आयुः) आयु (देहि) दे। हे (अग्ने) अग्ने, तू (वर्चोदा) वर्चस्व या तेज का देने वाला (असि) है, (वर्चः) वर्चस् या तेज (मे) मुझे (देहि) दे। (अग्ने) हे अग्ने ! (मे) मेरे (तन्वा) शरीर में (यत्) जो (ऊनं) कमियाँ-कमजोरियाँ हों, (तत्) वह (मे) मुझमें, (आपृण) भर दे, पूरी कर दे।

५

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके
गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति,
पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः ॥ (कठ उपनिषद् १।३।१)

ऋतम्। पिबन्तौ। सुकृतस्य। लोके। गुहाम्। प्रविष्टौ। परमे। परार्धे। छाया-आतपौ। ब्रह्मविदः। वदन्ति। पञ्च-अग्नयः। ये। च। त्रिणाचिकेताः।

अर्थ—(ऋतं) ऋत या सत्य को (पिबन्तौ) पीते हुए या भोगते हुए (सुकृतस्य) पुण्य कर्म के (लोके) लोक में, अर्थात् मानव जीवन में, (गुहां) गुहा या अन्तर्गुहा, भीतर की छोटी-सी, नन्हीं सी, कोठरी में (प्रविष्टौ) रहने वाले दो हैं (प्रभु और जीवात्मा)। (परमे) अतिश्रेष्ठ (परार्धे) हृदय प्रदेश में (छाया+आतपौ) छाया और धूप के समान,—ऐसा (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी पुरुष (वदन्ति) कहते हैं। (पञ्चाग्नयः) गार्हपत्यादि पाँच अग्नियों के सेवन करने वाले (ये च) और जो (त्रिणाचिकेताः) तीन ज्ञानाग्नियों के सेवन करने वाले हैं, या जिन्होंने तीन बार नाचिकेत अग्नि का चयन किया है, ये सब इसी बात की पुष्टि करते हैं।

———

यज्ञ, यज्ञोपवीत, और पञ्चकोश

तीसरे दिन सायंकाल के यज्ञ में श्री धर्मवीर जी कपिल और उनका परिवार यजमान थे। श्री कपिल जी की आयु ७१ वर्ष है। श्री बी० आर० शर्मा, श्री लालचन्द्र आदि नैरोबी के पुराने आर्य समाजी हैं। लाहौरीराम जी केनाडा चले गए हैं। महेन्द्रपालजी, जिनके नाम पर नैरोबी में महेन्द्रपाल हॉल है, वह आजकल दिल्ली में हैं। बैसाखीराम जी के परिवार के सभी भाई बड़े हो चले हैं और आर्य समाज का काम अच्छा करते रहे हैं—जैसे श्री ब्रह्मदेव भरद्वाज, श्री सत्यदेव भरद्वाज, डॉ० सुखदेव भरद्वाज और श्री जयदेव भरद्वाज। इन लोगों ने दिल्ली के ग्रेटर कैलास की आर्य समाज को और लंदन की आर्य समाज को आर्थिक सहायता प्रदान की है। श्री सत्यदेव जी गुरुकुल काँगड़ी के स्नातक हैं, और नैरोबी में कारखानों के बड़े ही सफल और अनुभवी मालिक और उद्योगपति हैं।

नैरोबी आर्य समाज में जहाँ पुरानी पीढ़ी के आर्य अनुभवी हैं वहाँ नवयुवक भी अब उत्साह से भाग लेने लगे हैं। जहाँ पर महेन्द्रपाल हॉल का विस्तृत प्रांगण है, वहाँ पर ३०-३५ लाख रुपये के व्यय से पुस्तकालय, स्विमिंगपूल, फ्लैट्स, और बड़ी-सी यज्ञ-शाला बनाने की आयोजनायें तैयार हो गयी हैं और आर्य समाज के प्रधान श्री गिरधारी लाल सेठ जी कटिकबद्ध हैं, कि शीघ्र ही नये निर्माण का काम आरम्भ हो जाये।

यज्ञ के अनन्तर मैंने श्री कपिल जी के परिवार को बधाई देने के प्रसंग में बतलाया कि गृहस्थी के जिस यज्ञ में पत्नी नहीं भाग लेती वह यज्ञ अधूरा माना जाता है। गुरुकुल में आचार्य और शिष्य साथ-साथ यज्ञ करते हैं। गुरु का शिष्य से उतना ही प्यारा सम्बन्ध है, जितना कि पति का पत्नी से। दोनों आपस में मिलते हैं तो उन्हें "मम हृदयं ते हृदयं दधामि" वाला मन्त्र पढ़ना चाहिए (दोनों के मन्त्रों में थोड़ा-सा ही भेद है—एक में प्रभु की याद बृहस्पति नाम से करते हैं और दूसरे में प्रजापति नाम से जैसा कि वेदारम्भ और विवाह संस्कारों की पद्धति में दिया हुआ है)। शिष्य का जन्म भी यज्ञ से होता है, और पत्नी का जन्म भी यज्ञ से। यज्ञ के बिना विवाह नहीं बनता और वेदारम्भ के यज्ञ के बिना शिष्य और शिष्या नहीं बनते। पुत्र, भाई, भतीजा, ये सब रिश्ते जन्म पर निर्भर हैं, पर पत्नी और शिष्य के रिश्ते यज्ञ पर निर्भर हैं। पति-पत्नी और गुरु-शिष्य ये रिश्ते यज्ञ से बनते हैं इसलिए दोनों मिलाकर साथ-साथ यज्ञ करें। अब शिष्य का नाम **अन्तेवासी** पड़ जाता है, गुरु के अन्तःकरण में रहने वाला और इसी प्रकार से नये रिश्ते से पत्नी **हृदयेश्वरी** कहलाती है। पत्नी शब्द उसी के लिए सार्थक है, जो पति का यज्ञ में साथ दे। यह नाम श्रेष्ठतम कर्म का है और श्रेष्ठतम कर्म वही है जो निष्काम और निःस्वार्थ भाव से "सर्व-जनहिताय सर्व लोक-हिताय" किया जाय।

यज्ञ में जो भी कोई भाग ले, उसे यज्ञोपवीत पहनना चाहिए। यज्ञोपवीत से यज्ञ करने का अधिकार प्राप्त होता हैं। गुरु और शिष्य और पति और पत्नी बिना यज्ञोपवीत के यज्ञ नहीं कर सकते। इसलिए यज्ञ करने वाली पत्नी का भी यज्ञोपवीत संस्कार प्यार से होता है।

यज्ञ के समय बराबर हम अपने शरीर के स्वास्थ्य के लिए प्रभु से प्रार्थना करते हैं—हम कहते हैं कि तनूपाऽऽग्नेऽसि तन्वं मे पाहि—हे ईश्वर, तू तनु की रक्षा करने वाला है, हमारे तनु की (शरीर की) रक्षा कर, और हम यह भी कहते हैं, कि हे प्रभो! हमें आयु दो, वर्चस् दो (आयुर्दाऽऽग्नेऽसि आयुर्मे देहि; वर्चोदाऽऽग्नेऽसि वर्चो मे देहि) और अन्त में हम कहते हैं "यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण" अर्थात् हे प्रभो! मेरे शरीर में जो कमियाँ और कमजोरियाँ (ऊनतायें या न्यूनतायें) हों उन्हें पूरा कर दो। प्रभु को तनूपा अर्थात् तनु का रक्षक हमने कहा, तो हमें समझ भी लेना चाहिए कि 'तनु' या शरीर क्या है। तनु का अर्थ है शरीर का ताना-बाना। यह स्मरण रखना चाहिए कि हमारे एक ही शरीर नहीं है, जो हड्डी और मांस का बना दीखता है। यह शरीर जिसकी आप फोटो खींचते हैं चित्र खींचते हैं या जिसकी मूर्तियाँ बनवाते हैं वह तो ऊपर का बक्सा या केबिनट है। यह भी सुन्दर है और इसकी रक्षा करनी चाहिए, पर असली शरीर तो इस शरीर के भीतर बन्द है। उसकी रक्षा के लिए हमें प्रभु से प्रार्थनायें करनी चाहिए।

हमारे ऋषियों ने हमें बताया कि हमारे सारे शरीर के पाँच प्रकार के ताने-बाने हैं, जिन्हें हम कोश कहते हैं। अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, और आनन्दमय कोश। इन पाँचों कोशों के भीतर एक छोटी-सी गुहा या गुफा है, आलपीन की नोक से भी छोटी जहाँ मैं बैठा हूँ। (शरीर में रहने वाला जीव बैठा है) और प्यारा परमात्मा भी उस गुफा में हमारे पास है। इसी के लिए उपनिषद् में कहा गया है कि "ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके, गुहां प्रविष्टौ परमे परार्द्धे"। ऊपर के शरीर को बनाने के लिये हम अन्न खाते हैं; इसलिए यह अन्नमय

कहलाता है। पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के गोलक इसी कोश में हैं। पर याद रक्खो कि इस अन्नमय कोश के भीतर प्राणमय कोश न हो, तो अन्नमय कोश कुछ नहीं कर सकता। प्राणों की सहायता के बिना न आँख देखेगी और न कान सुनेंगे। जिसके शरीर में लकवा मार जाता है, उसका न हाथ उठता है, और न पैर। शरीर में प्राण की प्रधानता है। जन्म लेते ही हमने प्राण लेना आरम्भ किया, और जब तक प्राण हैं, तब तक हम जीवित है। प्राण निकले तो हम मुर्दा। हम न करवट ले सकेंगे, न उठ कर बैठ सकेंगे। यह भी याद रखना कि हम सोते हैं, तब भी प्राण जागते हैं। अन्नमय कोश को स्वस्थ रखने के लिए व्यायाम करो और प्राणमय कोश को स्वस्थ रखने के लिए प्राणायाम करो।

प्राणमय कोश के भीतर एक और तीसरा कोश है जिसे मनोमय कोश कहते हैं। न तुम प्राणमय कोश का चित्र खींच सकते हो, न मनोमय कोश का। तुम्हारी मिट्टी की मूर्तियाँ बेकार हैं, क्योंकि न उनमें प्राणमय कोश है, न मनोमय कोश। मन का ही तो सब साम्राज्य है, मन का ही दूसरा नाम कुछ-कुछ चित्त है। चित्त की चञ्चलता ही उसकी बीमारी है। बिना मन या चित्त के न तुम कुछ सोच सकते हो, न याद कर सकते हो, न कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते हो। आँखे खुली हों, प्राण भी चल रहे हों, पर यदि तुम्हारा मन कहीं और हो तो इन आँखों से तुम कुछ देख भी नहीं सकते। याद रखना, शरीर से बड़ा प्राण है, प्राण से बड़ा मन है या चित्त है। जैसे शरीर के रोग होते हैं, वैसे ही प्राणों के भी रोग होते हैं, और मन और चित्त भी उसी प्रकार रोगी और अस्वस्थ होता है।

मनोमय कोश से भी अधिक सूक्ष्म दो कोश हैं जिनका नाम विज्ञानमय कोश और आनन्दमय कोश है (इन दोनों से मिलकर

स्वर्लोक बनता है।) मनोमय कोश द्यौ लोक है; प्राणमय कोश अन्तरिक्ष लोक है; और अन्नमय कोश पृथिवी लोक है। पृथिवी लोक से चलकर हमें स्वर्लोक में पहुँचना है। योग में उन साधनों का वर्णन है, जिससे हम स्वर्लोक में पहुँच सकते हैं। जैसे सिक्के के दो अनिवार्य तल होते हैं—हेड और टेल—; ऊपर का और नीचे का, इसी तरह विज्ञानमय कोश और आनन्दमय कोश हमारी अञ्जली के दो पुट हैं। एक के विना दूसरा नही रह सकता।

मैंने कहा कि प्राणमय और मनोमय कोश की बीमारियाँ होती हैं। इनके इलाज के भी अस्पताल होने चाहिये। कैन्सर रोग के अस्पताल खुले हैं, आँखों के रोग के अस्पताल हैं, दाँतों के रोग चिकित्सक हैं। इसी प्रकार मानसिक रोगों का भी इलाज होना चाहिए। आर्यसमाज के सत्संग इन्हीं रोगों के इलाजों के लिए हैं। यहाँ बच्चों को लाओ, बूढ़ों को लाओ। जिनका मनो-बल कम हो गया हो उन्हें लाओ। यज्ञ, संध्या प्राणायाम, दान, जप ये सब व्यर्थ नहीं है. अगर तुम अपने रोगों को समझते हो। किसी को चोरी की आदत है, किसी को झूठ बोलने की, किसी को क्रोध आता है, कोई लड़कियों के साथ छेड़खानी करता है, तो समझ लो कि ये इनके चित्त के रोग हैं। धार्मिक सत्संगों में लोगों के सम्पर्क में आकर चित्त के मैल धुलते हैं। जैसे छूत की बीमारियाँ होती हैं उसी तरह मानसिक रोगों की छूत भी फैलती है। सच्चे हृदय से ईश्वर की प्रार्थना करोगे, तो मनो-मय कोश की रक्षा होगी, और यह कोश स्वस्थ हो जायगा।

श्रुति-वचन

१

इषे त्वोर्जे वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽ आप्यायध्वमघ्न्याऽइन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽ अयक्ष्मा मा व स्तेनऽ ईशत माघशंसो ध्रुवाऽ अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ।   (यजु० १।१)

इषे । त्वा । ऊर्जे । त्वा । वायवः । स्थ । देवः । वः । सविता । प्र । अर्पयतु । श्रेष्ठतमाय । कर्मणे । आ । प्यायध्वम् । अघ्न्याः । इन्द्राय । भागम् । प्रजावतीः । अनमीवाः । अयक्ष्माः । मा । वः । स्तेम । ईशत । मा । अघशंसः । ध्रुवाः । अस्मिन् । गोपतौ । स्यात । बह्वीः । यजमानस्य । पशून् । पाहि ॥

अर्थ—हे भो ! हम तुझे (इषे) अन्न के लिए स्मरण करते हैं। हम तुझे (ऊर्जे) ऊर्जा या सभी प्रकार की अग्नियों के लिये आह्वान करते हैं। (वायवः) हमारे समस्त जो प्राण (स्थ) हैं, वह (देव) (सविता) देव-सविता प्रभु (श्रेष्ठतमाय) श्रेष्ठतम (कर्मणे) कर्मों में (प्रार्पयतु) अच्छी प्रकार संयुक्त करे। हे पुरुषो !

(आप्यायध्वं) तुम सब उन्नति को प्राप्त हो। हे प्रभो ! हमारी (प्रजावतीः) जो सन्तानें हैं, वे (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिए हों, और (अघ्न्या) जो गो आदि पशु हैं. वे भी (अनमीवा) रोग रहित हों, (अयक्ष्माः) यक्ष्मा आदि व्याधियों से मुक्त हों। (स्तेन) चोर आदि दुष्ट और (अघशंसः) पापी लोग (मा ईशत) मत उत्पन्न हों, (यजमानस्य) यजमान के (पशून्) पशुओं की (पाहि) रक्षा कर। (अस्मिन् गोपतौ) इस गोपाचक में (बह्वीः) बहुत सी (ध्रुवाः) निश्चल सदा रहने वाली सुख-समृद्धियाँ (स्यात) होवें।

२

वर्ष के बारह मासों के वैदिक नाम

मधु-माधव	(बसन्त ऋतु)	(यजु० १३।२५)
शुक्र-शुचि	(ग्रीष्म ऋतु)	(यजु० १४।६)
नभ-नभस्य	(वर्षा ऋतु)	(यजु० १४।१५)
इष-ऊर्ज	(शरद् ऋतु)	(यजु० १४।१६)
सह-सहस्य	(हेमन्त ऋतु)	(यजु० १४।२७)
तप-तपस्य	(शिशिर ऋतु)	(यजु० १५।५७)

३

पृथिव्या॑ऽ अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम्।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम्॥

(यजु० १७।६७)

पृथिव्याः। अहम्। उत्। अन्तरिक्षम्। आरुहम्। अन्तरिक्षात्। दिवम्। आरुहम्। दिवः। नाकस्य। पृष्ठात्। स्वः। ज्योतिः। अगाम्। अहम्॥

अर्थ—हे प्रभो, (अहं) मैं (पृथिव्याः) पृथिवी से उठकर (उत्) ऊपर (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष लोक की (आरुह) चढ़ूँ, उठ जाऊँ। (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से उठकर (दिवं) द्योलोक को (आरुहं) ऊपर चढ़ूँ, (दिवः नाकस्य पृष्ठात्) द्योलोक, या सुख देने वाले दुःख रहित स्थान से (स्वर्ज्योतिः) आनन्दमय और ज्योतिर्मय लोक को (अहं) मैं (अगाम्) प्राप्त होऊँ।

[पृथिवी = अन्नमय कोश; अन्तरिक्ष = प्राणमय कोश। दिवम् = मनोमय कोश। स्वः, ज्योति = विज्ञानमय और आनन्दमय कोश।]

———

अग्नि और ऊर्जा

आर्य समाज नैरोबी के चौथे दिन के परायण यज्ञ के यजमान डॉ० यशोधरा कन्सल और उनका परिवार था। जब मैं नैरोबी आया तो यशोधरा को यहाँ पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। लगभग १२ वर्ष पूर्व ये प्रयाग विश्वविद्यालय में प्राध्यापिका थीं। और उस समय मैं रसायन विभाग का अध्यक्ष था। प्रो० रामनाथ कौल, जो दर्शन विभाग के कभी अध्यक्ष थे, उनकी पुत्री दीपा कौल और यशोधरा की अच्छी मैत्री थी। इन दोनों ने प्रयाग विश्वविद्यालय से एम० एस-सी० किया और प्राणि-शास्त्र में अनुसंधान का काम करके डी० फ़िल्० की (डॉक्टरेट) उपाधि प्राप्त की। यशोधरा का तब विवाह नहीं हुआ था। अब वह डॉ० यशोधरा कन्सल हैं। उसके पति श्री हरबंशलाल कन्सल पंजाब के रहने वाले हैं। गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया की ओर से ये नैरोबी आये हुए हैं—वाटर-प्रोजेक्ट के सम्बन्ध में। श्री कन्सल जी इन्जीनियर हैं। केन्या में पानी का काफी अभाव है—दूर-दूर तक बस्तियाँ सूखी हैं। यहाँ के जंगल भी झुरमुट हैं जिन्हें सवाना (Savanuah) कहा जाता है। ऐसे झुरमुट जंगल इतने विस्तार से संसार में कहीं अन्यत्र नहीं पाये जाते। इन वनों के पेड़ नीचे कद के होते हैं, और इसीलिए इन जंगलों में हाथी और अन्य पशु आसानी से अपने खाने की वनस्पति सामग्री प्राप्त कर लेते हैं। जङ्गलों की उपज शीघ्र ही जङ्गली पशु खा जाते हैं, अतः ये जङ्गल कभी उतने घने

नहीं हो पाते जैसा कि भारत में। वन घने न होने पर और भी कम वर्षा होती है। यही कारण है कि केन्या राज्य की दूर-दूर बिखरी बस्तियों में पानी का अभाव है। श्री कन्सल जी को यहाँ की सरकार ने कुछ दिनों के लिए इस सहायता के लिए बुलाया है कि यहाँ देशवासियों को पानी कैसे जुटाया जाये, कहाँ जलकूप बनाए जायें—पानी भूस्तर के नीचे काफी गहराई पर है।

प्रयाग में तो मुझे पता न था, कि यशोधरा आर्य परिवार की है। विश्वविद्यालय में आर्य परिवारों के बालक पढ़ने आते हैं, तों उनके नये साथी बनते हैं और हमारे संघटन की यह कमी है कि स्थानीय आर्य समाजों को पता भी नहीं चलता कि विश्वविद्यालय में आर्य परिवारों के कौन-कौन युवक-यु वतियाँ पढ़ रहे हैं। यशोधरा के माता-पिता दिल्ली में हैं, उनके माता-पिता ने विवाह में उसे हवन के सब पात्र भेंट किये थे। नैरोबी की आर्य समाज में यशोधरा आर्य परिवारों के साथ अच्छी रुचि ले रही है। डॉ० यशोधरा नैरोबी के केन्याटा-महाविद्यावय में (जो अध्यापकों का प्रशिक्षण विद्यालय है) प्राणिशास्त्र की अध्यापिका है।

यशोधरा के परिवार को आशीर्वाद देने के बाद मैंने प्रवचन गायत्री मन्त्र के शब्दार्थ से किया। भूः, भुवः, स्वः यह तीन महाव्याहृतियाँ हैं। ये ईश्वर के तीन नाम भी हैं, ईश्वर के कारण सृष्टि की सत्ता है। यह सृष्टि उसी से उत्पन्न है, इसलिए प्रभु "भू" है,। सृष्टि केवल जड़ नहीं है—यह जगत्यां जगत् है—परिवर्त्तनशील है। प्रभु की चेतनता से प्रेरित होकर सृष्टि का पालन और विकास भी होता है। प्रभु ने न केवल हमें बनाया, वह बनाकर हमें छोड़ नहीं देता, वह हमारे छोटे

से शरीर को नित्य बढ़ाता और पोषण करता है। हम तो शरीर में रहने मात्र के लिए हैं, और शरीर से कम लेने के लिए पर शरीर का सारा पालन पोषण प्रभु की चेतनता के कारण है। इस लिए प्रभु "भूव" है। सृष्टि का एक मात्र उद्देश्य प्रभु से सम्पर्क के सुख की प्रप्ति करना है, इसलिए प्रभु का नाम "स्व" है, वही एकमात्र सुख का स्रोत है।

भूः, भुवः, स्वः तीन लोक भी हैं। जिस पृथ्वी पर हम हैं, वह "भूः" है जिस अन्तरिक्ष में हम प्राण लेते हैं; और जहाँ विचरते हुए मेघ हमारे सुख का साधन बनते हैं, उस लोक को "भुवः", कहते हैं। इस लोक से भी ऊपर जो कुछ है. जिसमें सूर्य और असंख्य ज्योतिष्मान् तारे हैं उस लोक का नाम "स्वः" है।

हमारे प्राचीन ऋषियों ने वैदिक ऋचाओं से प्रेरणा पाकर काष्ठ में से जब अग्नि-मन्थन किया, और धरती पर आग का प्रथम आविष्कार किया, तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा, वे आनन्द से प्रफुल्लित हो उठे। और उसी समय उन्हें एक प्रेरणा और प्राप्त हुई, जो अग्नि के आविष्कार से कम न थी। यह आविष्कार उतने ही महत्त्व का था. जितना कि न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण नियम। प्राचीन ऋषि ने इस मर्म और रहस्य को पहली बार हमें बताया कि मनुष्यों द्वारा धरती पर मन्थन विधि से उत्पन्न की हुई अग्नि, उस अग्नि से भिन्न नहीं है, जो बादलों की गड़गड़ाहट के समय अन्तरिक्ष में विद्युत् के रूप में प्रकट होती है, और यह दोनों अग्नियाँ उस अग्नि से भिन्न नहीं हैं जो द्यौलोक में सूर्य में विद्यमान है। समस्त द्यावा-पृथिवी, या रोदसी में एक ही अग्नि है, और इन तीनों अग्नियों के पृष्ठ में जो महान् अग्नि है, वह प्रभु का स्वयं तपस् है।

अग्नि के दो गुण हैं, उष्णता प्रदान करना, और ज्योति या आलोक देना। पृथ्वी पर मनुष्य द्वारा घर्षण विधि द्वारा तैयार की गयी यांत्रिक ऊर्जा उस ऊर्जा से भिन्न नहीं, जो विद्युत् ऊर्जा के रूप में मेघों में विस्फुटित होती है। सूर्य में तीसरे प्रकार से ऊर्जा बनती है—वह ऊर्जा लकड़ी को हवा में जलाकर नहीं बनाते। हम जानते हैं कि सूर्य की ऊर्जा परमाणुओं के नाभिकों के टूटने से बनती है, यह परमाणु-ऊर्जा है। ऋषियों की यह अनुभूति कितने महत्त्व की थी कि उन्होंने विज्ञान के इतिहास में पहली बार पढ़ाया कि यान्त्रिक ऊर्जा, विद्युत और परमाणु ऊर्जा (पृथिवी की अन्तरिक्ष की और द्यौलोक की) तीनों एक ही हैं। और ऊर्जाओं के विविध रूपों का उद्देश्य सृष्टि का कल्याण है। यजुर्वेद के पहले ही मन्त्र में इष और ऊर्जा के लिए प्रभु से आग्रह किया गया है. ऊर्जा से इष या अन्न पैदा होता है. और हमारे शरीर में यह इष फिर ऊर्जा बनाने के काम आता है। इष और ऊर्ज का युग्म पद यजुर्वेद में अनेक बार प्रयोग में आया है। दो मासों के नाम भी तो हमने इष और ऊर्ज रख छोड़े हैं।

ऋषियों ने पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौलोक की अग्नियों की एकता और अनुरूपता का जिस प्रकार ब्रह्माण्ड में अनुभव किया उसी प्रकार उन्होंने मनुष्य के पिण्ड में भी इस अनुरूपता का साक्षात्कार किया। वह भी महान् अनुभूति और आविष्कार है। हमारा अन्नमय कोश पृथिवी लोक है, हमारा प्राणमय कोश अन्तरिक्ष लोक है और हमारा मनोमय कोश द्यौलोक है। इससे आगे जो है, उसे ऋचाओं में स्वर्लोक कहते हैं। अन्नमय कोश की ऊर्जा हमारी मांसपेशियों की ऊर्जा है. जो अन्न के पाचन द्वारा हम प्राप्त होती है। जो कुछ हम खाते हैं, वह

जलकर हमारे शरीर के तापमान को स्थिर रखता है, और उससे ही हमारा शरीर काम करता है।

प्राणमय कोश की चेष्टाओं के लिए भी ऊर्जा चाहिए। यह ऊर्जा मरुतों और रुद्रों की है। प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान को जो ऊर्जा मिलती है, वह प्राणोर्जा बड़े महत्व की है, और ऋषियों ने हमें बताया कि यान्त्रिक ऊर्जा, प्राणोर्जा से भिन्न नहीं है, दोनों में एकता और अनुरूपता है। तीसरी ऊर्जा मनोमय कोश की है जिसका प्रयोग हम सोचने, विचारने, याद रखने, सपना देखने आदि में करते हैं (प्रमाण, विकल्प, विपर्यय निद्रा और स्मृति में), और यह ऊर्जा भी अन्नोर्जा, और प्राणोर्जा से भिन्न नहीं है। ये तीनों ऊर्जायें स्थूल-प्रकृति से हमें प्राप्त होती हैं। इन तीनों ऊर्जाओं से परे एक और ऊर्जा है, जिसका स्रोत प्रभु स्वयं है वह ऊर्जा स्वर्लोक की है, जो आनन्द और ज्ञान के रूप में हमें प्राप्त होती है। प्रकृति-निष्ठ होकर मनुष्य अन्नोर्जा, प्राणोर्जा और मानसोर्जा प्राप्त करता है, पर ब्रह्मनिष्ठ होकर मनुष्य को स्वर्लोक की ऊर्जा आनन्द और ज्ञान के रूप में प्राप्त होती है। नैरोबी वासियों को मेरा आशीर्वाद कि वे इन सभी ऊर्जाओं की अनुरूपता को समझें, और सुख और शान्ति की उन पर वर्षा हो।

————

पंचम प्रवचन

श्रुति-वचन

१

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥

(कठ० १।२।१६)

एतत् । हि । एव । अक्षरम् । ब्रह्म । एतत् । हि । एव । अक्षरम् । परम् । एतत् । हि । एवं । अक्षरम् । ज्ञात्वा । यः । यत् । इच्छति । तस्य । तत् ।

अर्थ––(एतत्) यह (अक्षरं) ओम् अक्षर (एव, ही) निश्चय-पूर्वक (ब्रह्म) ब्रह्म या महान् है, (एतत् हि एव अक्षरं) यह ओम् अक्षर ही (पर) पर या पर-ब्रह्म है। (एतत् हि एव अक्षरं) इस ओम् अक्षर को ही (ज्ञात्वा) जानकर (यः) जो (यत्) जिसकी (इच्छति) इच्छा करता है, (तस्य तत्) वह उसका हो जाता है।

२

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥
(कठ० १।२।१७)

एतत् । आलम्बनम् । श्रेष्ठम् । एतत् । आलम्बनम् । परम् । एतत् । आलम्बनम् । ज्ञात्वा । ब्रह्मलोके । महीयते ।

अर्थ—(एतत्) यह (आलम्बनं) आलम्बन, सहारा, आश्रय, (श्रेष्ठं) सर्वोत्तम है, (एतत् आलम्बनं) यह आलम्बन ही (परं) पर यह बड़ा है। (एतत् आलम्बनं) इस आलम्बन को (ज्ञात्वा) जानकर (ब्रह्मलोके) ब्रह्मलोक में जीव (महीयते) महिमा प्राप्त करता है, समादृत होता है।

———

प्रार्थना के साथ तपस्या और पुरुषार्थ

नैरोबी आर्य समाज के वार्षिकोत्सव सम्बन्धी वेदपारायण यज्ञ का पाँचवा दिवस २१ जुलाई को था। आज के यजमान श्री चन्द्रप्रकाश गुप्त और उनका परिवार था। वे आर्य समाज के पुराने अधिकारियों में से हैं। एक विद्यालय के प्रबन्धक भी हैं, और आर्य समाज के कार्यों में उनकी काफी रुचि है। उनकी पत्नी भी विद्यालय में अध्यापन का कार्य करती हैं। समस्त परिवार का मेरे ऊपर प्रचुर स्नेह है। गायत्री मन्त्र से मैंने प्रवचन प्रारम्भ किया—"उस देव सविता के वरेण्य भर्ग को हम सब धारण करें," और इसके निमित्त हम प्रभु से प्रार्थना करें कि "वह हमारी बुद्धियों को प्रेरित करता रहे।" मनुष्य अन्य पशुओं से इस प्रकार भिन्न है कि प्रभु ने उसे बुद्धि दी है—बुद्धि इसलिए दी है कि वह सत् और असत् में विवेक करावे—**सदसद् विवेकवती बुद्धिः**। बुद्धि का प्रयोग करने में मनुष्य स्वतन्त्र है। पशुओं को यह स्वतन्त्रता अल्पमात्र ही प्राप्त है, परन्तु मनुष्य को यह स्वतन्त्रता प्राप्त है कि सत् के लिए बुद्धि का प्रयोग करे, अथवा असत् के लिए। अपनी बुद्धि का प्रयोग करे ही न, दूसरे की बुद्धियों से काम लेता रहे—इसकी भी उसे स्वतन्त्रता है—एक भेड़ जिधर चल दी, सब भेड़ें चल दीं—ऐसा तो कुछ-कुछ पशुओं में भी होता है। पर मनुष्य के लिए विवेक बड़ा

आवश्यक है। हमारी बुद्धि को जब प्रभु प्रेरणा देता है, तब वह हमें कल्याण के मार्ग पर ले जाती है। जब शैतान इसको प्रेरणा देने लगता है, तो बुद्धि हमें छल, कपट, द्वेष, मिथ्याभिमान, चोर-बाजारी और स्वार्थमय क्रूरताओं की ओर ले जाती है।

परमात्मा से सद्बुद्धि माँगने की प्रार्थना करनी चाहिए। परमात्मा के पास सब कुछ है, पर उससे हम क्या माँगें, यह हमें स्वयं सोचना पड़ेगा। उसके भर्ग की [ज्ञान और आनन्द के भण्डार की] कोई सीमा नहीं है, पर हमें अपने लिए इसमें से कुछ चुन लेना पड़ेगा। इसी का नाम वरेण्यं भर्गः है। अगर तुम संगीतज्ञ होना चाहो, तो संगीत-कला प्रभु से माँगो, शास्त्रों के पण्डित होना चाहो, तो प्रभु से पाण्डित्व की प्रार्थना करना आरम्भ करो; भले आदमी बनाना चाहते हो, तो इसके लिए याचना करो। सोच लो कि तुम प्रभु से क्या माँगना चाहते हो। यह है—वरेण्यं भर्गः''।

मुँह से से कहने मात्र से प्रभु तुम्हारी बुद्धि को उस ओर प्रेरित नहीं कर देगा। तुमसे तपस्या करायेगा—जिस क्षेत्र में तुम तपस्या करोगे, उसी क्षेत्र में प्रभु बुद्धियों को प्रोत्साहित करेगा। आइन्सटाइन ने भौतिक-शास्त्र के क्षेत्र में तपस्या की, परमात्मा ने उसकी बुद्धि को उस क्षेत्र में प्रखर और तीव्र बनाया। दयानन्द ने वेद के पाण्डित्य क्षेत्र में तपस्या की, प्रभु ने उस क्षेत्र में दयानन्द को नया प्रकाश दिया। अगर संगीत के क्षेत्र में तुम तपस्या करने को तैयार नहीं हो, तो गायत्री के पाठ मात्र से तुम्हें फल नहीं मिलेगा।

यह स्मरण रखना, कि वेद की ऋचाओं का प्रादुर्भाव प्रभु से हुआ है। प्रभु की समस्त रचना उत्कृष्ट श्रेणी की है। वेद के सभी मन्त्र एक समान ही पवित्र हैं और श्रेष्ठ हैं। यह मत

कहना कि गायत्री मन्त्र सब मन्त्रों में सबसे अधिक पवित्र है। यह भी मत समझना की गायत्री मन्त्र का जाप बिना तपस्या के तुम्हें फल देगा। जाप जबान से नहीं होता। जाप तो हृदय से और दृढ़ संकल्प से होता है।

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि मनुष्य तुच्छ तपस्या और साधारण प्रयास करता है, पर प्रभु का प्यार पा ले, तो मनुष्य के द्वारा असाधारण कार्यों का सम्पन्न होना सम्भव हो जाता है। हम अपने लिए थोड़ा-सा ही करते हैं, और प्रभु हमारे लिए बहुत कुछ करता है, पर थोड़ा-सा काम हम से करवा लेता है। तुम्हारे घर में आम का पेड़ है। तुम अपने को उसका मालिक समझते हो। तुम्हारी जमीन है, तुमने उगाया। पर यह भूल जाओ कि धरती तुम्हारी है। तुमने केवल इतना ही किया है कि थोड़ी-सी मिट्टी खोदी, उसमें कुछ खाद डाल दी, बीज को मिट्टी के भीतर छिपा दिया [वह बीज़, जिसे तुमने नहीं बनाया], कुछ पानी दिया और कभी-कभी थोड़ी-सी रखवाली कर ली। बस, इतना ही तो तुमने किया। इस बात को तुम क्यों भूल जाते हो, कि धरती में जब तुमने वीज छिपा दिया था, तो कौन उस वीज में बैठा हुआ, एक छोटा अंकुर निकाल देता है ? कौन उस अंकुर को पालता-पोषता है ? उसे बड़ा करता है। उसमें पत्ते निकलते हैं। पेड़ पर फूल आता है। फूल में से फल निकलना प्रारम्भ हो जाता है। यह है प्रभु की जादूगरी और चमत्कार [इस चमत्कार के आगे समस्त बाबाओं और पैगम्बरों के छल-कपट से भरे चमत्कार फीके हैं]। तुमने तो बीज बोने का थोड़ा-सा पुरुषार्थ किया, बाकी तो सारा काम प्रभु का है।

तुमने रात को कुछ रोटी खायी, कुछ दूध पिया। तुमने थोड़ा-सा, ही काम किया—मुँह खोला और हाथ से उठा कर

खाने को पेट के भीतर की ओर खिसका दिया। खा-पीकर तुम सो गए। तुम्हें तो पता भी नहीं होता कि कौन-सा रसोइया तुम्हारीरोटी के टुकड़े से क्या-क्या तैयार करता है। प्रभु की व्यवस्था तुम्हारी रोटी को पीस-पास करके अनगिनती पदर्थ बनाती है। जो रुधिर के मार्ग से तुम्हारे शरीर में चक्कर लगाते हैं। यह रुधिर भोजन का कुछ अंश आँखों की पुतली में पहुँचता है। कुछ तुम्हारी हड्डियों या पेशियों में पहुँचता है। शरीर के जिस अंग को जिस द्रव्य की जितनी आवश्यकता है। प्रभु चुपके से वहाँ पहुँचा देता है—तुम तो सोते रहे, तुम्हें तो पता भी न चला। कब क्या बना और कैसे कहाँ पहुँच गया। इसीलिए मैं कहा करता हूँ कि आदमी तो अपने लिए बहुत कम करता है। प्रभु उससे थोड़ा-सा करवा तो लेता है पर बाद को वह स्वयं इस कार्य को सम्पन्न करता है। प्रभु की इस व्यवस्था मे जिसे विश्वास नहीं, वही तो मारा-मारा भटकता फिरता है। अकेले प्रभु पर भरोसा रखो—बाकी सब भरोसे झूठे हैं, बे मतलब हैं।

एतद् आलम्बनं श्रेष्ठं एतद् आलम्बननम् परम्। प्रभु के आलम्बन से बढ़कर और कोई आलम्बन नहीं। प्रभु का आलम्बन छोड़ दिया, तो दरदर के भिखारी बनोगे। बाबाओं. देवियों, माताओं ओर भगवानों के चक्कर में फँसोगे। आजकल भारतवर्ष में भगवानों की कमी नहीं है। इसके आगे लोग पुराने भगवानों को भी भूल गए। राम और कृष्ण, ईसा और मुहम्मद भी पुराने पड़ गये। ये भगवान, ये आचार्य, ये योगेश्वर कहते हैं, कि नये युग में अब पुराने भगवानों से काम नहीं चलेगा, पुराने भगवान् अपने समय में बढ़े रहे होंगे पर अब तो हममें दिव्य शक्ति है. हमारे चमत्कारों को देखो। तुम्हारा कल्याण हमसे

होगा। हाड़-मांस-मिट्टी के बने भगवानों के पीछे दुनिया पागल है। इससे बढ़कर नास्तिकता क्या होगी !!

भगवान हमारा घटघट व्यापी है। उसके देने के तरीके निराले हैं। वह सुख की वर्षा ऊपर से नहीं करता है। वह तुम्हारे अन्तःकरण में है। बाहर की आँखें मूंदो और भीतर की तरफ देखो। परमात्मा जब कुछ तुम्हें देगा, तो वह तुम्हारे माध्यम से ही देगा। अगर उससे तुमने सच्चे हृदय से धन की प्रार्थना की है तो वह तुम्हारे घर में रुपयों की बोरियां ऊपर से नहीं बरसायेगा,—वह तुमसे ही परिश्रम करायेगा और धन कमाने की तुम्हारी योग्यता बढ़ा देगा। अगर परीक्षायें उत्तीर्ण करना चाहते हो तो वह झूठ के द्वारा, परीक्षा में नकल करवा के उत्तीर्ण नहीं करावेगा, वह अध्ययन के प्रति तुम्हारी बुद्धि को प्रेरित करेगा और तुम सफल हो जाओगे।

यह सदा याद रखना कि तुम्हारे पास जो धन आ रहा है वह भगवान् का दिया है, या शैतान का। तरह-तरह के जुए और लॉटरी से कमाया गया धन शैतान का धन है, यह चोरी का धन है. ऐसा समझना चाहिए। आज सभी देशों में जुए से धन कमाने की आदत पड़ गयी है। भारत में भी देखो कि सरकारें जुए का प्रबन्ध करती है—आज उत्तर प्रदेश की लॉटरी, आज पंजाब की, आज हरियाणा की युधिष्ठिर ने जुआ खेला था, भारत नष्ट हो गया। आज सरकारें जुआ खिला रही हैं। इसका परिणम विनाश और दुःख होगा।

———

श्रुति-वचन

१

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।

(केन १।४)

यत् । वाचा । अनभ्युदितम् । येन । वाक् । अभि-उद्यते । तत् । एव । ब्रह्म । त्वम् । विद्धि । न । इदम् । यत् । इदम् । उपासते ।।

अर्थ—(यत्) जो (वाचा) वाणी से (अनभ्युदितं) नहीं प्रकट किया जा सकता, (येन) जिससे (वाक्) वाणी (अभ्युद्यते) प्रकट की जाती है। (तत्, एव) उसको ही (त्वं) तू (ब्रह्म विद्धि) जान और मान; (न) नहीं (इदं) यह (यत्) जो या जिसकी (इदं) अर्थात् जिस इसकी, तू अब तक (उपासते) उपासना करता आया है।

२

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
यदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।

(केन १।५)

यत् । मनसा । न । मनुते । येन । आहुः । मनः । मतम् ।

अर्थ—(यत्) जो (मनसा) मन से (न) नहीं (मनुते) मनन किया जा सकता, किन्तु (येन) जिसके द्वारा (मनः) मन (मतं) मनन करने की सामर्थ्य पाता है, उसको ही तू ब्रह्म जान, न कि उसको जिसकी तू अब तक उपासना करता आया है।

३

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।। (केन १।१।६)

यत् । चक्षुषा । न । पश्यति । येन । चक्षूंषि । पश्यति ।

अर्थ—(यत्) जो (चक्षुषा) आँखों से (न) नहीं (पश्यति) देखता है, (येन) जिसकी सामर्थ्य से (चक्षूंषि) आँखों को (पश्यति) देखता है, अर्थात् जिसकी सामर्थ्य से आँखें देखने में समर्थ होती हैं, उसको ही तू ब्रह्म जान, न कि उसको जिसकी तू अब तक उपासना करता आया है ।

४

यच्छ्रोत्रेण न शृणोतियेन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।। (केन १।७)

यत् । श्रोत्रेण । न । शृणोति । येन । श्रोत्रम् । इदम् । श्रुतम् ।

अर्थ—(यत्) जो (श्रोत्रेण) कान के द्वारा (न) नहीं (शृणोति) सुनता है, (येन) जिसकी सामर्थ्य से (श्रोत्रं) कान (इदं) यह (श्रुतं) सुनता है, उसी को तू ब्रह्म जान, न कि उसको जिसकी तू अब तक उपासना करता आया है ।

५

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।। (केन १।८)

यत् । प्राणेन । न । प्राणिति । येन । प्राणः । प्रणीयते ।

अर्थ—(यत्) जो (प्राणेन) प्राणों के द्वारा (न) नहीं (प्राणिति) साँस लेता है किन्तु (येन) जिसकी सामर्थ्य से (प्राणः) प्राण (प्रणीयते) भीतर लिया जाता है, उसी को तू ब्रह्म जान, न कि उसको जिसकी तू अब तक उपासना करता आया है ।

———

ईश्वर का दर्शन

वेद-पारायण यज्ञ का छठा दिन शुक्रवार २२ जुलाई को था। जूजारोड आर्य समाज के प्रधान और प्रधाना इस दिन के यज्ञ के यजमान थे। नैरोबी के मध्यम वर्ग के लोग जूजा रोड के निकट बसते हैं। अन्य स्थानों की अपेक्षा यहाँ रईसी ठाठ-बाट कम है। पर यहाँ के लोगों में भी आर्य समाज के कार्य के प्रति अच्छी रुचि है। मैं जब प्रथम बार १९७१ में नैरोबी आया था, नैरोबी में पौरोहित्य का कार्य श्री पं० ज्ञानचन्द्र जी करते थे। उन्होंने जूजा रोड के परिवार के व्यक्तियों में, विशेषतया महिलाओं में, वेदपाठ का अच्छा अभ्यास डलवाया था। जूजा रोड की महिलाओं के अच्छे सत्संग लगते थे। तभी से मैं जूजा रोड के नाम से परिचित हूँ। नैरोबी से सेवा-मुक्त होने के अनन्तर पं० ज्ञानचन्द्र जी कैनेडा चले गए। उनके बच्चे भी वहाँ हैं। पिछले वर्ष जब मैं कैनेडा के नगर माण्ट्रियल गया था, (श्री प्रकाशवीर शास्त्री जी के साथ, २६ से ३० अक्टूबर, १९७६), तो वहाँ पं० ज्ञानचन्द्र जी के एक सुपुत्र से भेंट हुई थी। वे अपने घर पर आर्य समाज का सत्संग करते हैं और लोगों के घरों में आवश्यकता पड़ने पर संस्कार करा देते हैं। पूर्वी अफ्रीका से गये हुए भारतीयों की कैनेडा में सबसे घनी बस्ती वेङ्कोवर में है, जो पश्चिमी तट के निकट है। मैंने सुना है कि आर्य समाज का भवन भी यहाँ बन गया है।

पं० ज्ञानचन्द्र जी यही हैं, और उगाण्डा से गया हुआ खोसला परिवार भी यहाँ है। १६७१ में जब मैंने उगाण्डा की यात्रा की थी, तो टोरोरो नगर में श्री केवल कृष्ण खोसला और उनके परिवार से भेंट हुई थी। उगाण्डा की परिस्थितियाँ भारतीयों के विरुद्ध हो गयी और श्री खोसला जी कैनेडा के वेङ्कोवर नगर चले गये हैं। मैंने सुना है कि वे आर्य समाज का वहाँ अच्छा काम कर रहे हैं। मुझे विश्वास है कि अफ्रीका से कैनेडा और इंग्लैण्ड में गये हुए भारतीयों से आर्य समाज को लाभ होगा। जो काम हम भारतवासी अपने साधनों से नहीं सम्पन्न कर पाये वह इस प्रकार सम्पन्न हो जायेगा। इग्लैण्ड और कैनेडा में यदि आर्य समाज के प्रसार का कार्य होगा, तो वह भारत में बसे हुए भारतीयों द्वारा नहीं, प्रत्युत् अफ्रीका से गये हुए पंजाबी भाइयों के द्वारा। बस एक बात मुझे अपनी यात्राओं में बराबर खटकती है, वह यह कि हम गुजराती परिवारों में आर्य समाज का प्रभाव स्थायी न बना सके। अफ्रीका में ही नहीं, संसार के प्रत्येक उन्नत देश में गुजरातियों और सिन्धियों ने व्यापार के द्वारा अच्छी सफलता प्राप्त की है। श्री नानजी कालीदास मेहता और उनके परिवार ने अफ्रीका में भी आर्य समाज की संस्थाओं को दृढ़ किया। उगाण्डा, टैंगा और दार-एस-सलाम की आर्य समाजों में गुजरातियों का अच्छा हाथ था। पर धीरे-धीरे इन सभी आर्य समाजों में पंजाबियों का प्रभाव बढ़ता गया, और गुजराती भाई आर्य समाज से दूर हटते गए। मैं बराबर पंजाबी आर्य समाजी भाइयों से कहता रहता हूँ, कि वे गम्भीरता से इस समस्या पर विचार करें, कि वे गुजरातियों (अथवा-अन्य प्रदेशों के व्यक्तियों) को साथ लेकर आर्य समाज की सेवा क्यों नहीं कर

सकते। अगर हम गुजराती भाइयों को साथ लेकर चल सकें, तो संसार में आर्य समाज के कार्य को अच्छी गति से चला सकेंगे। आजकल नैरोबी के वार्षिकोत्सव में गुजरातियों का सहयोग बिल्कुल भी नहीं दीख रहा है। नैरोबी का व्यापार गुजरातियों और सिन्धियों के हाथ में अधिक है और गुजरातियों की संख्या इस देश में बहुत है। भारत में भी इस समस्या पर हमें गम्भीरता से विचार करना होगा कि आर्य समाज का प्रचार हिन्दी भाषी इत्तर भारतीयों के बीच में ही क्यों सीमित है ! अस्तु।

आज के प्रवचन के पूर्व एक हृदयाकर्षक भावात्मक गीतिका का गायन महिलाओं ने बड़े मीठे स्वर से किया था। ऋग्वेद के एक मन्त्र का भाव लेते हुए यह कविता थी—ऐसा लगा कि मानों सपने में, या सोती-सी अवस्था में हमारे पास भगवान् आये—उनके दर्शन की धुंधली-सी झाँकी मिली। तबसे न जाने मन कैसा हो गया ! भगवान शीघ्र ओझल हो गये और मन उनके दर्शन के लिए व्याकुल हो गया। मैंने भगवान के दर्शन का विषय अपने प्रवचन के लिए चुना। भगवान के दर्शन की लालसा सबको है। प्रत्येक आस्तिक यह कहता है कि भगवान का दर्शन करा दो। किन्तु वस्तुतः सत्य तो यह है, कि हम सब भगवान के दर्शन से डरते हैं। डर हमें यह लगता है कि कहीं भगवान हमसे यह पूछ न बैठे कि तू नाम तो मेरा लेता है, पर प्यार तुझे शैतान से है। तू पापी क्यों है, भाई भाई से लड़ता क्यों है ? झूठ का व्यापर करता है, यह धन्धा छोड़ना नहीं चाहता, फिर मुझे क्यों पुकारता है ? दिल तेरा और कहीं है, और होठों से केवल मेरा नाम जपता है ? याद रखना, तुम दुनिया को धोखा दे सकते हो, पर न अपने

को धोखा दे सकते हो और न प्रभु को। प्रभु तुमसे यह भी पूछेगा, कि तुम मुझे क्यों बुला रहे हो, क्या चाहते हो? इसके उत्तर में तुम्हारे पास क्या है? तुम कहीं यह माँगना तो नहीं चाहते कि तुम्हारी दुकान तो चले, पर पड़ोसी की दुकान में घाटा हो जाये, और उसकी दुकान बन्द हो जाये। प्रभु हँसेगा, कि तुम स्वार्थ की ऐसी बात कर रहे हो जिसमें ईश्या, द्वेष और बैर की भावना है। इसीलिए मैं कहा करता हूँ कि लोग ईश्वर के डरते हैं, झूठ-झूठ उसका नाम लेते हैं। हम पापी हैं, और पाप का यह डर हमारे सिर पर सवार रहेगा। जिसमें बुरी आदतें पड़ जाती हैं वह तो माता, पिता और गुरू के सामने जाने से डरता है—वह इनसे दूर कतराता फिरता है। यही हमारा हाल है।

ईश्वर का दर्शन भी हम विचित्र तरह करना चाहते हैं। हम उसे आँखों से देखना चाहते हैं, और उसकी आवाज अपने कानों से सुनना चाहते हैं। पर उपनिषद् कहती है, कि आँख वहाँ तक जाती ही नहीं। यह समझ लेना कि जिस किसी चीज को तुम आँख से देख लोगे, तो वह निश्चयपूर्वक चाहे कुछ भी हो, ईश्वर नहीं हो सकती। युक्ति स्पष्ट है—क्योंकि हमने आँखों से देखा, इसीलिए अमुक वस्तु ईश्वर नहीं है। ईश्वर की कारीगरी, उसकी चित्रकारी तो हो सकती है, पर ईश्वर नहीं। ईश्वर तो वह है, जिसे नेत्र न देख सकें। पर जो नेत्र को ऐसी शक्ति दे, जिससे हमारे नेत्र संसार के मूर्तिमान पदार्थों को देखने में समर्थ हों। ईश्वर के ही प्रसाद से हमारे कान सुनने की सामर्थ्य प्राप्त करते हैं, पर ईश्वर की वाणी को वह सुन नहीं सकते। ईश्वर की वाणी को कोई टेप रिकार्ड नहीं कर सकता। ईश्वर न इन बाहरी आँखों से देखा जा सकता

है, न इन बाहरी कानों से सुना जा सकता है। उसके दर्शन के लिए हमें भीतर की आखें खोलनी होंगी, और उसके शब्दों को सुनने के लिए अपने अन्तःकरण के कान खोलने होंगे।

याद रखना कि जितनी चीजों को हम आँखों के गोलकों से देखते या कानों के गोलकों से सुनते हैं, वे तो बड़ी थोथी चीजें हैं। हमारे शरीर में अन्नमय कोश से ज्यादा महत्त्व का प्राणमय कोश और मनोमय कोश है, इसी को किसी ने आँखों से नहीं देखा। न तुमने आज तक मुझे देखा, न मैंने आज तक तुम्हें देखा जो कुछ मैंने देखा है, वह तुम्हारे है शरीर के वस्त्र हैं। तुम्हारे शरीर की चमड़ी और उसका अस्थि-पिञ्जर भी तो एक प्रकार की सन्दुकची है, जिसके भीतर बहुत छोटी-सी गुफा में तुम बैठे हुए हो। जब हम और आप एक दूसरे को आँखों से नहीं देख सकते, तो भला ईश्वर को इन आँखों से कैसे देखोगे। मूर्खता की बात होगी, यदि कोई कहे कि हम तुम्हें ईश्वर दिखा सकते हैं।

पर यह याद रखना कि ईश्वर तो बिल्कुल हमारे पास है, जहाँ हम हैं, वहीं वह है। थोड़ी देर यह पता तो लगाओ कि तुम कहाँ हो, वहीं अपने प्यारे ईश्वर को ढूँढ़ना। हम जानें या न जानें ईश्वर के पास हम (उनकी गोदी में) कई बार जाते हैं। सांख्य दर्शन के आचार्य कपिल मुनि कहते हैं कि सुषुप्ति, समाधि और मोक्ष की अवस्था में हमें परमात्मा से भेंट होती है। दुनिया में सुषुप्ति से बढ़कर कोई अवस्था नहीं। गहरी नींद सोने का नाम सुषुप्ति है, पर ऐसी गहरी नींद हो कि उसमें सपना भी न दीखे, न उसमें कोई वासना या कामना हो, केवल बेसुधी हो। ऐसी सुषुप्ति में प्रभु बड़े प्यार से हमें अपनी गोद में उठा लेता है, हमारी सारी थकावट मिट जाती है। जब

जगते हैं, तो हम कहते हैं कि बड़े आनन्द से सोये । यह आनन्द कहाँ से आया ? यह थकावट कैसे मिटी ? प्रभु की गोद का ही यह प्रसाद था । इस बात को मत भूलना । पर तुम्हें याद भी नहीं है, तुम सो रहे थे, प्रभु बड़े प्यार से तुम्हारी थकावट मिटा रहा था ।

योग की समाधि में तुम्हें प्रभु के साक्षात् दर्शन होते हैं । उस दर्शन के समय तुम जगते होते हो । प्रभु के साक्षात्कार से तुम्हारे हृदय के मैल भी धुल जाते हैं, सुषुप्ति में तो केवल शारीरिक थकावट मिटी थी, पर समाधि से जब लौटते हो, तो पवित्र होकर लौटते हो । प्रभु दर्शन का वह सबसे वड़ा प्रसाद है ।

———

श्रुति-वचन

१

उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम् । धिया विप्रो अजायत ॥
(यजु० २६।१५)

उपह्वरे । गिरीणाम् । संगमे । च । नदीनाम् । धिया । विप्रः । अजायत ।

अर्थ—(गिरीणां) पर्वतों की (उपह्वरे) गुफाओं में, और (नदीनाम्) नदियों के (संगमे, च) संगम पर (धिया) बुद्धि या प्रार्थनाओं द्वारा (विप्रः) बुद्धिमान विद्वान् (अजायत) उत्पन्न होता है।

[परमात्मा का साक्षात् दर्शन करना हो, तो मन्दिरों, मसजिदों, और गिरजों से बाहर आओ, और प्रकृति की गोद में बैठकर प्रभु की कारीगरी का आनन्द लो—पर्वतों की गुफाओं और उपत्यकाओं में, नदियों के तट पर हरे-भरे वनों और उपवनों में, और छत के ऊपर चमकते और टिमटिम करते तारों में प्रभु का दर्शन करो—सत्य प्रकाश]

२

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदुसर्वस्यास्य बाह्यतः ॥
(यजु० ४०।५)

तत् । एजति । तत् । न । एजति । तत् । दूरे । तत् । उ । अन्तिके । तत् । अन्तः । अस्य । तत् । उ । सर्वस्य । अस्य । बाह्यतः ।

अर्थ—(तत्) वह ब्रह्म (एजति) चलायमान, शीघ्र गति वाला है, (तत्) और साथ-साथ वह (एजति) चलता (न) नहीं है। (तत्) वह (दूरे) बहुत-बहुत दूर तक विस्तृत है, और फिर भी (तत्, उ, अन्तिके) वह हमारे बिल्कुल समीप है। (तत्) वह (सर्वस्य, अन्तः अस्य) इस सब के अन्दर, सर्वव्यापक है, और साथ ही साथ (तत् उ, सर्वस्य, अस्य बाह्यतः) वह सबके बाहर, समस्त सृष्टि के बाहर भी फैला हुआ है।

३

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥
(यजु० ३४।१)

यत् । जाग्रतः । दूरम् । उत्-ऐति । दैवम् । तत् । उ । सुप्तस्य । तथा । एव । एति । दूरम् । गमम् । ज्योतिषाम् । ज्योतिः । एकम् । तत् । मे । मनः शिवसंकल्पम् । अस्तु ।

अर्थ—(यत्) जो (देवम्) दिव्य शक्ति वाला (जाग्रतः) जागते हुए (दूरं) दूर-दूर तक (उदैति) उड़ान मारता है. (तत्, उ) और वही (सुप्तस्य) सपने में या सोते हुए (तथा एव) उसी प्रकार (एति) गति करता है, (तत्) वह (दूरं गमं) दूर तक जाने वाला मन (ज्योतिषां) ज्ञान-ज्योति देने वाली इन्द्रियों का (ज्योतिः) प्रकाश अर्थात् प्रकाशक (एकं) एक-मात्र है, (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिव-संकल्पं) शिव-संकल्प वाला, कल्याण की भावनाओं वाला (अस्तु) हो।

४

उपयामगृहीतोऽसि मधवे त्वा। (मधवे-चैत्र मास के लिए)
उपयामगृहीतोऽसि माधवे त्वा। (माधवे-वैशाख मास के लिए)
उपयामगृहीतोऽसि शुक्राय त्वा। (शुक्राय-ज्येष्ठ मास के लिए)
उपयामगृहीतोऽसि शुचये त्वा। (शुचये-आषाढ़ मास के लिए)
उपयामगृहीतोऽसि नभसे त्वा। (नभसे-श्रावण मास के लिए)
उपयामगृहीतोऽसि नभस्याय त्वा। (नभस्याय-भाद्र मास के लिए)
उपयामगृहीतोऽसि इषे त्वा। (इषे आश्विन मास के लिए)
उपयामगृहीतोऽसि ऊर्जे त्वा। (ऊर्जे-कार्तिक मास के लिए)
उपयामगृहीतोऽसि सहसे त्वा। (सहसे-मार्गशीर्ष मास के लिए)
उपयामगृहीतोऽसि सहस्याय त्वा। (सहस्याय-पौष मास के लिए)
उपयामगृहीतोऽसि तपसे त्वा। (तपसे-माघ मास के लिए)
उपयामगृहीतोऽसि तपस्याय त्वा। (तपस्याय-फाल्गुन मास के लिए)
उपयामगृहीतोऽसि अंहसस्पतये त्वा। (अंहस्पतये-अधिमास या मलमास के लिए)

(यजु० ७।३१)

उपयामगृहीतः। असि। मधवे। त्वा। उपयामगृहीतः। असि। माधवाय। त्वा।

अर्थ—हे प्रभो ! तुम (उपयाम-गृहीत) विधिवत्, नियमानुसार, अधिकारानुसार गृहीत हो, हमने तुम्हें स्वाभाविक रूप में अपना इष्टदेव माना है। तुम महान् हो, हम तुच्छ हैं; तुम सर्वज्ञ हो, हम अल्पज्ञ हैं; तुम ज्ञान और आनन्द के भण्डार हो, हम ज्ञान और आनन्द के भिखारी हैं, यह हमारा-तुम्हारा स्वाभाविक सम्बन्ध है। इसी अधिकार से तुम अधिपति हो।

मन्त्र में वर्ष के तेरह महीनों के लिए भी उद्बोधन साथ-साथ किया गया है।

प्रभु का प्यार

२३ जुलाई को वार्षिकोत्सव के वेदपारायण यज्ञ का सातवाँ दिवस था और आज के यज्ञ के यजमान श्री गिरिधारी लाल सेठी और उनका परिवार था। श्री सेठी जी आजकल नैरोबी आर्य समाज के प्रधान हैं। न केवल वे सफल व्यापारी हैं, बड़े कर्त्तव्यपरायण हैं और जो जिम्मेदारी अपने ऊपर लेते हैं, उसे पूरी तरह निभाते हैं। शिष्ट और मृदुभाषी हैं और पति-पत्नी दोनों मुसकाते रहते हैं।

आज के यज्ञ में अन्य मन्त्रों के साथ यजुर्वेद के २६वे अध्याय की २५ कण्डिकाओं के ६२ मन्त्रों का पाठ हुआ। इस अध्याय में एक मन्त्र था—**उपह्वरे गिरीणां, संगमे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत।** ईश्वर का प्यार हमें कहाँ प्राप्त हो सकता है? खुली आँखों से प्रभु की कला और कीर्ति का कहाँ दर्शन कर सकते हैं? किस स्थान पर बैठकर हम ईश्वर की याद करें और उपासना करें ? श्रुति कहती है कि पहाड़ों की गुफाओं और कन्दराओं के पास, या नदियों और प्राकृतिक सरोवरों के पास जाकर, नदियों या चश्मों का जहां संगम हो (मनुष्य की बनायी नहरों या मनुष्य के द्वारा निर्मित तालाबों के पास नही)। ऐसी जगह चले जाओ, जहाँ उत्तर-दक्षिण पूर्व-पश्चिम, ऊपर-नीचे प्रभु की कारीगरी प्रभु की कृपा और उसकी कला हमें याद दिला रही हैं। मैंने १९६० की यात्रा में यूरोप के बड़े-बड़े गिरजे देखे जिन्हें कुशल कारीगरों ने बड़ी तपस्या से सजाया है। इन गिरजों की चित्रकला और शिल्पकला के सामने भारत के मन्दिरों की

कला कोई महत्त्व नहीं रखती। मैंने इस्तम्बूल की मस्जिद और मौंट्रियल के गिरजे भी देखे। कितने भव्य हैं! पर ये मन्दिर, मस्जिद और गिरजे आदमी की कारीगरी की ही प्रशंसा करते हैं। फर्श पर देखो तो आदमी की कारीगरी, किवाड़ों और दीवारों पर देखो तो आदमी की कारीगरी और ऊँची-ऊँची छतों पर देखो तो आदमी की कृति और कला। मनुष्य अपनी कला से प्रभु की कला को छिपा देता है। जब तक पत्थर का एक टुकड़ा केन्या पर्वत की गोदी में पड़ा है, वह पुकार कर कह रहा है, कि मेरा बनाने वाला कोई मानव-शिल्पी नहीं है। पर संगतराश उसी पत्थर के टुकड़े को छेनी से तराश कर पत्थर की कूँडी बना देता है। यह कूँडी बोलबोल कर कहती है कि मेरा निर्माता शिल्पी या आदमी है। आदमी की बनायी हुई मूर्तियों को तोड़ कर चूरा-चूरा कर दो। अब फिर पत्थर के चूरे के कण-कण तुमसे कहेंगे कि हम तो तुम्हारे बनाये नहीं प्रभु के बनाये हैं। इसीलिए मैं कहा करता हूँ कि यदि प्रभु के दर्शन करने हों, तो गिरजों, मस्जिदों और मन्दिरों से बाहर निकल जाओ, जंगलों में चले जाओ, लहलहाते खेतों के पास चले जाओ, बागों में चले जाओ—वहाँ प्रभु दिखायी पड़ेगा। प्रभु की उपासना ड्राइंगरूमों में, महलों के सजे सजाये कमरों में, संगमरमर की बनायी हुई तुम्हारी भव्य यज्ञशालाओं में नहीं हो सकती। और तुम्हें कहीं जगह न मिले तो मकान की छत पर ही चले जाओ–कम-से-कम तुम्हारे सिर के ऊपर विस्तृत आकाश तो दिखाई पड़ेगा। अमावस्या की रात को छत से विस्तृत ब्रह्माण्ड के उस ज्योतिर्मय लोक को देखो जिसमें करोड़ों मील दूर चमचमाते तारे दीख रहे हैं। वे बतायेंगे कि प्रभु कितना बड़ा है और उसका साम्राज्य कहाँ-कहाँ तक फैला हुआ

है। इतने बड़े विश्व के सम्राट बृहस्पति और ब्रह्म की तुलना में तुम अयोध्या, मथुरा और द्वारिका के राजा की क्यों बात करते हो! नैरोबी में तुम्हे अपने राष्ट्रपति केन्याटा का वैभव दीखेगा। पर छत के ऊपर बैठकर प्रभु के वैभव को देख कर मुग्ध होने का अभ्यास डालो। याद रक्खो, कि प्रभु की कारीगरी से प्यार नहीं कर सकता, वह प्रभु का प्यारा नहीं बन सकता।

एक दिन की बात है कि मैं प्रयाग के कम्पनी बाग में घूम रहा था। मैंने देखा कि कुछ लोगों का छोटा-सा समूह दरी बिछा कर एक छपी हुई तसवीर की मानों पूजा कर रहा है। किसी आचार्य या गुरु का चित्र था, क्योंकि आजकल भारत में सौ से ऊपर गुरु, देवी, मातायें और भगवान पैदा हो गए हैं। मेरे हृदय ने कहा कि इन अबोध पुरुषों पर तरस खाओ। कम्पनी बाग में इन्हें कोई चीज प्रभु की याद दिलाने को नहीं मिली, कि यह कागज पर छपी तस्वीर लाये हैं हमें याद रखना चाहिए कि यदि कम्पनी बाग की फूल-पत्तियाँ, बाग की घास और दूब, बाग में खिले हुए फूल फूलों पर मंडराती हुई तितलियाँ जिस मूर्ख को ईश्वर की याद नहीं दिला सकतीं तो उसे छापाखाने की तसवीर कैसे याद दिलावेंगी? लोगों ने ईश्वर के दर्शन को मखौल बना रक्खा है। प्रभु तो अपनी कृति में छिपा हुआ हमें मुस्करा कर अपनी ओर बुला रहा है, कि मैं यहाँ हूँ, मैं तुमसे दूर नहीं हूँ।

यजुर्वेद में अनेक ऐसे मन्त्र हैं जिनमें ये तीन शब्द दोहराये गये हैं—उपयामगृहीतोऽसि। आज जिन मन्त्रों से आपने आहुति दी है, उनमें भी कई मन्त्रों में ये शब्द आये। प्रभु को बड़े प्यार से सम्बोधित किया गया है कि तुम उपयामगृहीत हो। प्रभु की

सर्व व्यापकता में तो सन्देह ही क्या, क्योंकि दूर या निकट कोई भी ऐसा स्थान नही मिल रहा जहाँ उसकी कृति, उसका काव्य उसकी चित्रकारी और उसका प्यार नहीं है। तद्दूरे, तद्वन्तिके वह दूर से दूर भी है और निकट से निकट। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः, सबके भीतर भी है और सबके बाहर भी। पर यह याद रखना चाहिए कि उसके पास तुम्हें अकेले जाना है। तुम चाहते हो कि प्रभु दर्शन के समय तुम्हारे साथ तुम्हारी पत्नी भी चले, कुनबा भी चले तो ऐसा नहीं होगा। प्रभु सबसे अकेले में मिलता है, तुम्हारे साथ कोई नहीं जा सकता। न राम जायेगा, न हनुमान न कृष्ण जायेगा, न राधा जायेगी, न ईसा जायेगा, न मोहम्मद। इनमें से भी जिसे जाना होगा वह अकेले जायेगा, अपने भक्तों को वह नहीं ले जा सकेगा। कोई गुरु और आचार्य भी तुमको अपने साथ नहीं ले जा सकेगा। तुम उसके पास किसी माध्यम से नहीं जाओगे। तुम किसी के माध्यम से जाना ही क्यों चाहते हो ? वह तो उपयामगृहीत है– सीधे उसके दर्शन होते हैं, अकेले में होते हैं। अपने अन्तःकरण के मार्ग से झाँक कर देखो, वह सीधे तुम्हें दिखायी देगा। तुम्हारी पत्नी यदि उसे देखना चाहेगी, तो वह अपने अन्तःकरण के मार्ग से देखेगी, तुम्हारा बेटा देखना चाहेंगा, तो उसे भी अपने भीतर उसके दर्शन होंगे। प्रभु तक सबकी पहुँच है और सबकी अलग-अलग। प्रभु सबको अलग-अलग एकान्त में प्यार करता है और अलग-अलग तुमको डाँटता-डपटता भी है।

प्रभु के दर्शन पाते ही, तुम प्रभु के प्यारे बन जाओगे। इतने प्यारे बन जाओगे, कि फिर तुम्हें औरों का प्यार फीका मालूम होने लगेगा। कहीं उसका प्यार मिल गया, तो फिर

उसके आगे दूसरों के प्यार की उपेक्षा करने लगोगे। इसीलिए मैंने कहा है, कि प्रभु के दर्शन तुम्हें अकेले में करने पड़ेंगे. वह अकेले में तुम्हें दर्शन देगा। कोई पत्नी नहीं चाहती कि उसका पति ईश्वर को प्यार करे। कोई पति भी नहीं चाहता कि पत्नी ईश्वर को प्यार करने लगे। पत्नी चाहती है कि उसका पति सिवाय उसके किसी को प्यार न करे। कहा जाता है कि औरतें और कुत्ते प्यार के मामले में बड़ें ईर्ष्यालु होते हैं। मैंने घरों में पले हुए ऐसे कुत्तों को देखा है जो यह चाहते हैं. कि उसका मालिक केवल उन्हें प्यार करे अपने बेटे-बेटियों को भी नहीं। मीरा के पति को यह असह्य था कि मीरा प्रभु को प्यार करे। दयानन्द के पिता को असह्य था. कि उसका बेटा मूलशंकर प्यारे प्रभु की खोज में घर से बाहर निकल पड़े। वस्तुत: सच्ची बात तो यह है कि कोई भी नहीं चाहता कि उसका बच्चा ईश्वर का प्यारा बन जाए, क्योंकि वे यह जानते हैं. कि जो ईश्वर का प्यारा बन जाता है उसे सारी दुनिया फीकी लगने लगती है। कबीर. तुलसीदास, मीराबाई, गौतमबुद्ध या दयानन्द की प्रशंसा तो संसार करेगा, पर वह यही चाहेगा, कि दूसरों के बच्चे सन्त बनें, साधु बनें; पर उनके पुत्र और पुत्री गृहस्थी में ही बँधे रहें। मेरे ऐसे मामूली संन्यासी से भी लोग डरते हैं. मेरी खातिर करते हैं तारीफ करते हैं, खिलाने-पिलाने को तैयार हैं, पर सब यही चाहते हैं कि इनके बच्चे धनवान बनें, बड़े अफसर बन जायें पर साधु-संन्यासी न बनें। मैं आपको संन्यासी बनाने नहीं आया। गीता में तो लिखा है कि संन्यासी से त्यागी बड़ा होता है। त्यागी वह है जो गृहस्थी में रहता हुआ भी फल का परित्याग करके (कर्म का नहीं) निःस्वार्थ भाव से दूसरों के हित की कामना से कर्त्तव्यों को करे। इसी

का नाम कर्म और कर्म के फल को ईश्वर के प्रति समर्पित कर देना है। जिसे ईश्वर के दर्शन हो जाते हैं और जो ईश्वर का प्यारा बन जाता है. उसका तो जीवन ही बदल जाता है।

ईश्वर के दर्शन से मन बदल जाता है और मन को बदले विना ईश्वर भी नहीं मिलता। हम कह चुके हैं कि ईश्वर के पास तुम्हें अकेला जाना पड़ेगा। तुम्हारा मन भी वहाँ नही जायेगा।
न तत्र चक्षुर्गच्छति, न वाग् गच्छति, न मनो न विद्मो न विजानीमः।
वहाँ तो तुम आँख, नाम, वाणी, मन इनमें से कोई नहीं ले जा सकोगे। यदि तुम दर्शन करोगे तो बिना आँख के, यदि तुम उसकी वाणी सुनोगे तो बिना कान के। प्रभु भी तो बिना आँख-कान के देखता-सुनता है और बिना मुख के बोलता है। तुम्हें भी वैसा ही करना पड़ेगा तुम मन को वहाँ नहीं ले जा सकते।

हमारा मन तो चाहता भी नहीं, कि मैं या तुम प्रभु के पास जाओ। वह बराबर तुम्हें लौटा कर बाहर की दुनिया में खड़ा कर देता है। इस मन से हमारा छुटकारा भी नहीं है, क्योंकि वह है बड़े काम का। जीवन भर साथ नहीं छोड़ेगा। मन बड़ा चञ्चल और नटखट है। किसी ने ठीक कहा है कि मन बानर है। स्वभाव से चञ्चल, नकल करने में होशियार और छेड़खानी करने वाला। हमारा मन केवल मामूली बन्दर ही नहीं ऐसा बन्दर है, जिसे किसी ने शराब पिला दी हो, जो नशे में मदमस्त हो और इस तरह से नटखट भी और बदहवास भी। इतना ही नहीं, कोई बिच्छू आकर इसे डंक भी मार गया है। स्वभाव से नटखट था; फिर शराब का नशा और अब बिच्छू का विष भी इस पर चढ़ गया। धन, सम्पत्ति, वासना से मदमस्त अभिमानी तो था ही— इसका इसे नशा

था, अब द्वेष, बैर, ईर्ष्या, कलह आदि का विष भी इस पर सवार है। ऐसे मन को हमें अपने वश में करना है, इससे हमें काम लेना है। आसान नहीं है कि ऐसे मन को हम "शिव संकल्प" वाला बना सकें। हे ईश्वर! तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु। नैरोबी के आप सबको मेरा आशीर्वाद। शेष फिर कल।

———

श्रुति-वचन

१

शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभि स्रवन्तु नः ॥

(यजु० ३६।१२)

शम्। नः। देवीः। अभिष्टये। आपः। भवन्तु। पीतये। शम्। योः। अभि। स्रवन्तु। नः।

अर्थ—(आपः) व्यापक एवं कामनाओं को प्राप्त करानेवाली (देवी) प्रभु की दिव्य शक्तियां (नः) हम सबके लिए (अभिष्टये =अभीष्टये) मन चाहे फलों की प्राप्ति के लिए, (पीतये) प्रभु के संपर्क का आनन्द -पान के लिए (शम्) शान्तिदायक (भवन्तु) होवें। और (शंयोः) शम् की, शिव और मय की, लौकिक और आत्मिक दोनों प्रकार के आन्नद की (नः) हम कर (अभि, स्रवन्तु) सब ओर से वर्षा करें।

१

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः।
सर्वँ शान्तिः शन्तिरेव शान्ति सा मा शान्तिरेधि ॥

द्यौः। शान्तिः। अन्तरिक्षम्। शान्तिः। पृथिवी। शान्तिः। आपः। शान्तिः। औषधयः। शान्तिः। वनस्पतयः। शान्तिः।

विश्वेदेवाः। शान्तिः। ब्रह्म । शान्तिः। सर्वम्। शान्तिः। शान्ति। एव। शान्ति। सा। मा। शान्तिः। एधि॥

अर्थ—(द्यौः शान्तिः) द्यौलोक से शान्ति मेरे पास आवे, (अन्तरिक्षं शान्तिः) अंतरिक्ष मुझे शान्तिदायक हो; (पृथिवी शान्तिः) समस्त पृथिवी मुझे शान्ति दे, (आपः शान्तिः) जल मेरे लिये शान्ति-कर होवें, (ओषधयः शान्तिः) भूमि या खेतों में पैदा होने वाली औषधियाँ, अर्थात् शाक पात, फल-फूल, अन्न-मूल, सब शान्तिप्रद हो, (वनस्पतय शान्तिः) समस्त वनस्पतियाँ, जंगल के वृक्षादि शान्तिदायक हों, (विश्वेदेवाः शान्तिः) प्रकृति को समस्त शक्तियाँ हमें शान्ति, देवें (ब्रह्म शान्तिः) वेद-ज्ञान हमारी शांति का प्रदाता हो ,(सर्वं शान्तिः जो कुछ भी संसार में है, वह सब शान्तिदायक हो (शान्तिः एव शान्तिः) शान्ति ही शान्ति मुझे सब ओर मिले, (सा शान्तिः) ऐसी प्यारी शान्ति (मा) मेरे प्रति (ऐधि) बढ़ती जावे।

३

ओ३म् शांतिः। शांतिः। शांतिः॥

हे प्रभो! आधिभौतिक शान्ति हम सबको प्राप्त हो।
आधिदैविक शान्ति हम सबको प्राप्त हो।
आध्यात्मिक शान्ति हम सबको प्राप्त हो।

४

तिस्रो देवीर्हविषा वर्द्धमानाऽइन्द्रं जुषाणा जनयो न पत्नीः।
अच्छिन्नं तन्तुं पयसा सरस्वतीडा देवी भारती विश्वतूर्तिः॥
(यजु० २०।४३)

तिस्रः। देवीः। हविषा। वर्द्धमानः। इन्द्रम्। जुषाणाः। जनयः। न। पत्नीः। अच्छिन्नम्। तन्तुम्। पयसा। सरस्वती। इडा। देवी। भारती। विश्व-तूर्तिः॥

अर्थ—(तिस्रः) तीन (देवीः) देवियाँ, दीप्यमान शक्तियाँ, (हविषा) श्रद्धा, प्रेम, और निष्ठा से (वर्धमानाः) बढ़ने वाली, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् परमात्मा को (जुषाणः) प्रसन्न करने वाली (जनयः) सन्तान उत्पन्न करने वाली (पत्नीः) पत्नियों, जननियों या माताओं के (न) समान हमारे लिए कल्याणकारिणी हैं। (अच्छिन्नं तन्तुं) न टूटने वाले सूत्र या तन्तु को (पयसा) स्निग्ध दुग्ध या रस से पुष्ट करने वाली हैं। (विश्वतूर्त्तिः) सबसे ही निराली ये देवियाँ सरस्वती, इडा और भारती हैं।

सरस्वती—समस्त ज्ञान-विज्ञान की पोषिका देवी (Divine Knowledge)

इडा—अतिपूजनीय सभ्यता और संस्कृत की पोषिका देवी (Divine Culture)।

भारती—देववाणी, वाग्शक्ति, भाषा और साहित्य की पोषिका देवी (Divine Language)।

५

सरस्वती साधयन्तीधियं न इडा
देवी भारती विश्वतूर्त्तिः। तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदम-
च्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य ॥ (यजु० २।३।८)

सरस्वती। साधयन्ती। धियम्। नः। इडा। देवी। भारती। विश्वऽतूर्त्तिः। तिस्रः। देवीः। स्वधया। बर्हिः। आ। इदम्। अच्छिद्रम्। पान्तु। शरणम्। निषद्य।

६

आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञं सरस्वती सह रुद्रैर्नऽआवीत्।
इडोपहूता वसुभिः सजोषा यज्ञं नो देवीरमृतेषु धत्त ॥
(यजु० २६।८)

आदित्यैः । नः । भारती । वष्टु । यज्ञम् । सरस्वती । सह । रुद्रैः । नः । आवीत् ॥ इडा । उपहूता । वसुभिः । सजोषाः । यज्ञम् । न । देवीः । अमृतेषु । धत्त ।

अर्थ—(भारती) देवी भारती (आदित्यैः) आदित्यों के साथ (नः) हमारे (यज्ञं) यज्ञ को (वष्टु) प्यार करे। (सरस्वती) सरस्वती देवी । (रुद्रैः सह) रुद्रों के साथ (नः) हमारी (आवीत्) रक्षा करे । (इडा) इडा देवी (वसुभिः) वसुओं द्वारा (सजोषाः) उनसे मिलकर (उपहूता) उपहूत या प्रशंसित हो। (देवीः) ये तीनों देवियाँ (अमृतेषु) अमृतों में (यज्ञं) यज्ञं को (धत्त) स्थापित करें ।

७

सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ॥

(कठोपनिषद् का शान्ति-मन्त्र)

सह । नौ । अवतु । सह । नौ । भुनक्तु ॥ सह । वीर्यं । करवावहै ॥ तेजस्विनौ । अधीतम् । अस्तु ॥ मा । विद्विषावहै ।

अर्थ—(सह, नौ) हम दोनों साथ-साथ (अवतु) एक-दूसरे रक्षा करें। (सह, नौ) हम दोनों साथ-साथ (भुनक्तु) खाये-पियें भोग करें । (सह) साथ-साथ (वीर्य) तेज, ओज और वीर्य (करवावहै) हम दोनों प्राप्त करें । (अधीतम्) हम दोनों का पढ़ा हुआ । (तेजस्विनौ) तेजस्वी हो । कभी भी हम दोनों (मा विद्विषावहै) द्वेष नहीं करें ।

गुरु-शिष्य और पति-पत्नी के परस्पर व्यवहार का यह मंत्र है । भोजन प्रारम्भ करते समय भी सब मिल कर इस मंत्र का

पाठ आर्य समाज से प्रभावित क्षेत्र में करते रहे है। यह विनियोग "सह नौ भुनक्तु" शब्दों के कारण समर्थ-विनियोग (रूपसमृद्धि युक्त विनियोग) कहा जा सकता है। महात्मा मुन्शीराम जी (स्वामी श्रद्धानन्द जी) की प्रेरणा से यह मन्त्र पढ़ कर गुरुकुल के ब्रह्मचारी और गुरुगण भोजन प्रारम्भ करते थे।

महात्मा गांधी जब गुरुकुल आये, तो उन्हें यह मंत्र पसन्द आया, और उन्होंने भी अपने आश्रम में इस मंत्र का भोजनारम्भ में प्रचलन किया। एक बार स्वामी श्रद्धानन्द उनके आश्रम में पधारे। भोजन के समय यह मन्त्र पढ़ा गया। स्वामी जी से महात्मा गांधी ने यह शंका प्रस्तुत की—इस मन्त्र में "सह नौ भनक्तु" शब्द है (हम दोनों साथ भोजन करें), किन्तु आश्रम में तो दो से कहीं अधिक व्यक्ति भोजन में सम्मिलित हैं, ऐसा होने से "नौ" तो ठीक न होगा। तत्काल स्वामी श्रद्धानन्द ने उत्तर दिया --प्रत्येक सहभोज में दो दल ही होते हैं—प्रथम खिलाने वाला (गृहपति), और दूसरा—खानेवाला, अर्थात् जितने लोग मेहमान बनकर आये हैं, (host and guest)—इस प्रकार दो ही तो हुए। महात्मा जी इस उत्तर से पूर्णतया सन्तुष्ट हो गए।

८

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्र-प्र दातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥

(यजु० ११।८३)

अन्नपते। अन्नस्य। नः। देहि। अनमीवस्य। शुष्मिणः। प्र-प्र। दातारम्। तारिषः। ऊर्जम्। नः। धेहि। द्विपदे चतुष्पदे।

अर्थ—(अन्नपते) अन्नों के स्वामिन्, हे प्रभो! (अनमीवस्य) रोग से रहित और सुखकर (शुष्मिणः) और अत्यन्त बल देने वाले (अन्नस्य) अन्नका (नः) हमारे लिए (प्र-प्र देहि) बहुत-बहुत सा दान दो, और (दातारं) जो हमें अन्न दे रहा है, उस दाता को (तारिषः) दुःखों से तार दो। (नः) हमारे लिए और (द्विपदे) समस्त मनुष्य और दो पैर के पक्षियों के लिए, एवं (चतुष्पदे) गाय-घोड़े आदि सभी ग्राम्य पशुओं के लिए (ऊर्जं) शारीरिक ऊर्जा, ओज, तेज, बल और सामर्थ्य (धेहि) धारण कराइये।

[इस मन्त्र का विनियोग अन्नप्राशन संस्कार में भी कराया गया है। इस मन्त्र को पढ़कर भोजन प्रारम्भ करने की प्रथा भी कुछ वर्षों से हाल में ही चल पड़ी है।]

———

तीन देवियाँ—इडा, सरस्वती, भारती

आर्य समाज नैरोबी के वेद पारायण यज्ञ का आठवाँ दिन २४ जुलाई रविवार। साधारतया प्रत्येक रविवार को नैरोबी के साउथ-सी आर्य समाज मन्दिर में साप्ताहिक सत्संग लगा करता है। साप्ताहिक संग की विज्ञप्ति प्रति रविवार से पहले ही अँग्रेजी से साइक्लोस्टाइल करके सदस्यों के पास भेज दी जाती है। १०.३० बजे से हवन आरम्भ होता है, फिर संध्या-प्रार्थना, फिर राष्ट्रीय गान भजन और किसी का उपदेश। फिर कुछ विशेष बातें, जैसे मास में एक रविवार को उस मास में पड़ने वाले सदस्यों के परिवार के (आबाल-वृद्ध, सभी के) जन्म दिवसों या विवाह दिवसों की बधाइयाँ, और प्रेमोपहार। किसी परिवार के घर का कोई विदेश गया, या विदेश से लौटा। इसका शुभ समाचार और बधाई (ऐसे अवसरों पर परिवार के लोग आर्य समाज को दान भी करते हैं, जिसका उल्लेख इन समाचारों में दिया जाता है)। अन्त में आरती, अन्नपते मन्त्र का पाठ और फिर ऋषि-लंगर। पिछले शताब्दी वर्ष से अब प्रथा चल गयी है कि प्रति रविवार को लंगर होता है—पूरी, छोले, हलवा, शाक-भाजी का। साप्ताहिक सत्संग के सम्बन्ध में जो विज्ञप्ति पत्र वितरित होता है, उसमें अधिवेशन के कार्यक्रम के अतिरिक्त एक पैराग्राफ का शीर्षक होता है

"(उस सप्ताह का विशेष अध्यात्म सन्देश)" । उदाहरण के लिए उस सप्ताह का (१० जुलाई, रविवार था) जिस दिन मैं नैरोबी पहुँचा था यह अध्यात्म सन्देश अर्थात् 'जन्म से पूर्व का जीवन, इस विषय का था । जन्म से पहले क्या, और मृत्यु के वाद क्या, ये दोनों प्रश्न गम्भीर और रहस्यमय हैं । मृत्यु के बाद जीवन मानने वाले तो बहुत हैं, पर मृत्यु के पहले जीवन था इसमें लोगों को कम विश्वास है । सदस्यों से आग्रह किया गया कि इस विषय पर मनन कर । भारत की सम्पन्न आर्य समाजें भी प्रत्येक अधिवेशन के लिये ऐसे विज्ञप्ति पत्र प्रकाशित कर सकती हैं ।

वार्षिकोत्सव का समारोह होने के कारण रविवार के अधिवेशन का विशेष कार्यक्रम स्थगित रहा । साउथ-सी के आर्य समाज मन्दिर में सत्संग न लगा, और लोग महेन्द्रपाल हाल के वेद पारायण यज्ञ में सम्मिलित हुए । आज का यज्ञ ५। बजे प्रातः के स्थान में ६ बजे से प्रारम्भ हुआ । यज्ञ के बाद सन्ध्या, और प्रार्थना हुई और उसके अनन्तर ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः के संबंध में मैंने लघु वार्ता दी । तीन बार शान्ति शब्द क्यों दोहराया जाता है इस बात की मैंने व्याख्या की—दुःख तीन प्रकार के होते हैं । आधिभौतिकः, आधिदैविक और आध्यात्मिक, अतः शान्ति की भी तीन मान्यताये हुई—आधिभौतिक दुःखों से छुटकारा और उनके सम्बन्ध की शान्ति, आधिदैविक दुःखों से छुटकारा और उनके सम्बन्ध की शान्ति, और इसी प्रकार आध्यात्मिक शान्ति । वैदिक आदर्श शान्ति की स्थापना करना है, अतः हम केवल शान्ति माँगते हैं—शान्तिः एवं शान्तिः । हमारा नारा क्रांति का नहीं है । शल्यक (सर्जन) को कभी चाकू चलाना पड़ता है, पर उसका उद्देश्य भी शान्ति की स्थापना

है। सन्ध्या के पहले मन्त्र के पहले शब्द भी शान्ति से आरम्भ होते हैं—शन्नो देवी०। क्रांति में क्रन्दन है चीत्कार और हाहाकार। शान्ति के बाद सुख और आनन्द मिलता है, जो जीवन का उद्देश्य है।

आज के पारायण यज्ञ के यजमान डॉ० सत्यव्रत रामरक्खा और उनका परिवार था। सत्यव्रत जी के पिता रामरक्खा १८९५ ई० में नैरोबी आये थे। नैरोबी के निकट एक छोटे से रेलवे स्टेशन के वे स्टेशन मास्टर थे। उनके पिताजी उन इने-गिने व्यक्तियों में से थे जिन्होंने आर्य समाज के कार्य की नींव नैरोबी में डाली। सत्यव्रत जी और उनकी पत्नी दोनों मिलकर चिकित्सा-कार्य करते हैं। उन्हें आशीर्वाद देते हुए मैंने कहा कि आप दोनों तो रोज यजमान और यजमानी हैं, क्योंकि चिकित्सा द्वारा लोगों के कष्टों को दूर करना महायज्ञ है।

आज के यज्ञ में यजुर्वेद के २९वें अध्याय के मन्त्रों से आहुतियाँ दी गईं। यजुर्वेद में ४० अध्याय हैं, जिसमें से प्रथम २० अध्याय पूर्वार्द्ध का काम करते हैं, और बाद के २० अध्याय उत्तरार्द्ध हैं। प्रत्येक अध्याय में कण्डिकायें हैं। बहुत सी कण्डिकाओं में एक-एक मंत्र ही है, जैसे चालीसवें अध्याय की कण्डिकाओं में, पर बहुत से अध्यायों की कुछ कण्डिकाओं में एक से अधिक मंत्र हैं। जैसे यजुर्वेद की पहली कण्डिका में ५ मंत्र हैं—पहला मंत्र केवल 'इषे त्वा' है, दूसरा मंत्र केवल 'उर्ज्जे त्वा' है, तीसरा मंत्र 'वायवस्थ' है, फिर चौथा मंत्र लम्बा है और उसके बाद 'यजमानस्य पशून् पाहि' वाला पाँचवा मंत्र है।

यजुर्वेद के २९वें अध्याय में ऐसे कई मन्त्र हैं, जो शरीर की तुलना रथ से करते हैं। मन इस रथ का सारथी है, आत्मा इस रथ का रथी है। मन को कैसे वश में करें, इसका इस अध्याय

में प्रतिपादन है। इसी विषय का विस्तार उपनिषदों में है, और गीता ने भी अपने विचार यहीं से लिए हैं। यजुर्वेद के इस अध्याय के ८वें मन्त्र में तीन देवियों का उल्लेख है। पहले भी कई स्थानों पर इन देवियों की ओर संकेत किया गया है। ऋग्वेद में तीन देवियों की महत्ता है। इनके नाम इडा, सरस्वती और भारती हैं। भारती का विशेषण मही भी है। इन देवियों का अभिप्राय बड़े गुह्य रूप से मन्त्रों में प्रतिपादित किया गया है। इस अध्याय के मन्त्र में तो स्पष्ट रूप से इडा का सम्बन्ध वसु से, और सरस्वती का सम्बन्ध रुद्र से और भारती का सम्बन्ध आदित्य से बताया गया है। इस अभिप्राय से हम इडा को लक्ष्मी भी कह सकते हैं। आजकल धन की देवी (अर्थात् वसु की) लक्ष्मी मानी जाती है, अतः तीन देवियाँ लक्ष्मी, सरस्वती और भारती हुयीं। सबसे अधिक प्रतिष्ठा भारती की है, उसका सम्बन्ध आदित्य से है। ब्रह्मचारी भी स्वामी दयानन्द ने तीन तरह के बताये हैं—वसु, रुद्र और आदित्य। आदित्य ब्रह्मचारी सर्वश्रेष्ठ है। उसकी प्रतिष्ठा सबसे अधिक है। इसीलिए भारती की प्रतिष्ठा सबसे अधिक है। इडा का सम्बन्ध भौतिक सम्पन्नता से है, धन, धान्य, भूमि, पशु और सन्तान की सम्पन्नता इडा देवी का प्रसाद है। यह लक्ष्मीपूजन है। रुद्र का सम्बन्ध सत्ता, स्वत्व, अधिकार, शासन और शक्ति से है। यह सरस्वती देवी का प्रसाद है। आदित्य का सम्बन्ध आलोक, प्रकाश, ज्ञान, विद्या, विज्ञान अध्यात्म प्रसाद से है। यह सम्पन्नता भारती देवी का प्रसाद है।

तीन ही प्रकार की वासनायें होती हैं जिन्हें हम अँग्रेजी में लस्ट कहते हैं; धन के प्रति वासना, शक्ति या अधिकार के प्रति वासना, और ज्ञान के प्रति वासना। जो धन अपने लिये क़माया जाता है, वह भोग का साधन न बनकर वासना का

साधन बन जाता है। वेद कहता है कि जो अकेला खाता है, वह पाप खाता है। वेद में कहा है कि सौ हाथों से कमा और हजार हाथों से बाँट। जो ऐसा करता है, उसका धन (लस्ट) न होकर (लस्टर, lustre) हो जाता है। धन की वासना या लस्ट (lust) बुरी है, पर दूसरों की सहायता के निमित्त कमाया और बाँटा गया धन तेजस्वी और यशस्वी है अब यह वासना न होकर देवी बन जाता है। देवता वह है जो धन दान करे (देव वह है, जो स्वयं प्रकाशित हो, दूसरे का प्रकाश दे; और दान दे। दान देने वाला ही देव या देवी है)। नैरोबी वासियों से मेरा आग्रह है कि वे खूब धन कमायें पर धन गाड़कर बैंक-बैलेन्स बढ़ाने के लिए नहीं है। जितना कमाओ, उसे लोक-सेवा के काम में लगाओ।

बहुतों को शक्ति और अधिकार की वासना है—प्रधान होना चाहते हैं, मन्त्री होना चाहते हैं (मुख्यमन्त्री या प्रधान मन्त्री और छोटे-छोटे मन्त्री)। यह भी वासना है, यदि शक्ति का उपयोग अपने को गौरवशाली दिखाने के लिये करोगे। सत्ता, प्रभुत्व और अधिकार प्राप्त करो किन्तु दूसरे की सेवा के लिए। तब तो तुम सरस्वती देवी के उपासक कहलाओगे। सामाजिक जीवन को नियन्त्रित करने के लिए यदि तुम्हें प्रभु ने और शक्ति दी है, तो उसका दुरुपयोग अत्याचार और स्वार्थ-परायणता के लिए मत करो। अगर तुम शक्ति और अधिकारों का उपयोग लोक-सेवा के भाव से करोगे, तो तुम्हारी शक्ति 'लस्ट' न बनकर 'लस्टर' बन जायगी। तब यह 'देवी' कहलावेगी।

विद्वानों का ज्ञान भी वासना बन सकता है। ज्ञान की लस्ट भी उतनी ही बुरी है, जितनी कि धन या प्रभुता (शक्ति) की।

सच्चा विद्वान् विद्या के कारण न धन कमाना चाहता हैं, न प्रभुता चाहता है। जो ज्ञान दूसरों के सुख के निमित्त होता है, वह भारती देवी का वरदान है, वह आदित्य की कोटि का है। प्राचीन ऋषियों और मनीषियों ने देश-विदेश में सर्वत्र ही तपस्या करके ज्ञान का, वेदांग, उपांग ओर उपवेदों का विस्तार किया जिससे मनुष्य का गौरव बढ़े। आज के युग में वैज्ञानिकों ने भी दारिद्रय मिटाने के लिए वैज्ञानिक वैभवों और शिल्पों का विकास किया। ये सब भारती देवी के वरदान हैं। पर यदि मनुष्य अपने ज्ञान को छिपाकर रक्खेगा (कहेगा कि वेद शूद्र न पढे, स्त्रियाँ न पढ़े, विदेशी-गोरे और काले दोनों न पढ़े,) तो ऐसा ज्ञान हमें तेजस्वी नहीं बनायेगा। सब दानों से ब्रह्मदान श्रेष्ठ माना गया है—सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते। श्रुति भी कहती है कि 'तेजस्विनावधीतमस्तु'—हमारा पढ़ा-पढ़ाया तेजस्वी हो। ऐसा ही ज्ञान देवी बनता हैं, न कि वासना। छिपाकर रक्खा हुआ ज्ञान केवल वासना है, पर दूसरों को पीड़ा देने के निमित्त जिस ज्ञान का विकास किया जाता है, वह आसुरी है, वह देवी का वरदान नहीं किसी चण्डिका पैशाचिनी या राक्षसिणी का अभिशाप है। अतः तीन देवियों से आशीर्वाद पाने की हममें उत्सुकता होनी चाहिये—इडा, सरस्वती और भारती से।

———

श्रुति-वचन

१

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
उशतीरिव मातरः ।

(ऋ० १०।९।२; यजु ११।५१; ३६।१५)

यः । वः । शिवतमः । रसः । तस्य । भाजयत । इह । नः । उशतीः । इव । मातरः ।

अर्थ—हे प्रभो ! (यः) जो (वः) तुम्हारा (शिवतमः) अत्यन्त प्यारा और कल्याणकारी (रसः) स्नेह और आनन्द का रस है, उसे (नः) हमें (भाजयत, इह) थोड़ा सा हमारे भाग का जो हो, दीजिए, पान कराइये, (मातरः) माता के (इव) समान (उशतीः) जब वे स्नेहसिक्त होती है; भरपूर अपना प्यार देती हैं ।

२

प्रियं मा कृण्णु देवेषु प्रियं राजशु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ।

(अथर्व० १९।६२।१)

प्रियम् । मा । । कृणु । देवेषु । प्रियम् । राजसु । मा । कृणु । प्रियम् । सर्वस्य । पश्यतः । उत । शूद्रे । उत । आर्ये ।।

अर्थ -हे प्रभो ! आप (मा) मुझे (देवेषु) ज्ञानी ब्राह्मणों में (प्रियं) प्रिय (कृणु) कीजिए। (मा) मुझे (राजसु) राजाओं या क्षतियों में (प्रियं) प्रिय (कृण्णु) कीजिए। (उत) और (शूद्रे) शूद्रों में (उत) और (आर्थे) ऐश्वर्य सम्पन्न वैश्यों में (प्रिय वनाइये), और (सर्वस्य) सब (पश्यतः) देखने वालों का (प्रियं) प्रिय मैं वनूं ।

अय—ईश्वरः—निघण्टु २२।२; आर्यः—ईश्वर-पुत्रः, ईश्वर का पुत्र; (निरुक्त ६।२६) ईश्वर का अर्थ ऐश्वर्यवान् । अर्यः= ईश्वर; —निरुक्त ५।६; १३।४;

[आर्य.—The son of the lord]

३

इन्द्रं विश्वा अवीवृध-त्समुद्र-व्यचसं गिरः ।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ।।
(ऋ० १।११।१; साम० ३४३।८२७)

इन्द्रम् । विश्वाः । अवीवृधन् । समुद्र-व्यचसम् । गिरः । रथीतमम्ः। रथीनाम् । वाजानाम् । सत्पतिम् । पतिम् ।।

अर्थ—(विश्वाः) सब (गिरः) वेदवाणियां (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् विजय का दाता इन्द्र का (अवीवृधन्) बखान करती हैं। (समुद्र व्यचसं) जो समुद्र या अन्तरिक्ष के समान अति व्यापक है। (रथीनांः) रथियों में जो (रथीतमं) सर्वश्रेष्ठ रथी है. (वाजानां) समस्त बलों का (पतिं) पति है, (सत्पतिम्), सच्चा-पति है।

———

परमात्मा का सर्व-प्रिय नाम इन्द्र

आज, जुलाई २५, १६७७ के यज्ञ के यजमान श्री किशोर लाल धीरी और उनका परिवार था। श्री किशोर लाल जी कई स्कूल चलाते हैं। मैंने मोरिशस में देखा था, और यहाँ अफ्रीका में भी कि व्यावसायिक रूप में भी विद्यालय चलाये जाते हैं। अपने देश में विद्यालय स्थापित करने पर जनता से भीख माँगनी पड़ती है। सरकारी अनुदान और विद्या।थियों की फीस-मात्र से विद्यालयों का खर्चा नहीं चलता। पर इन देशों में बच्चों की फीस इतनी अधिक है. कि विद्यालय चलाकर व्यापार भी किया जा सकता है। सुनते है कि आर्य समाज को भी यहाँ विद्यालयों से अब काफी बचत होने लगी है, जिसका उपयोग आर्य समाज को विविध प्रवृत्तियों में किया जा सकता है। किशोरी लाल जी के परिवार को आशीर्वाद देते हुए मैंने कहा कि विद्यादान से बढ़कर और कोई दान नहीं। यह ब्रह्म-यज्ञ है। ब्रह्म का अर्थ ईश्वर भी है, और ज्ञान भी। निष्काम भाव से विद्या दान का प्रबन्ध किया जाय, तब तो सर्वोत्तम है। बालक-बालिकाओं की शिक्षा का प्रबन्ध तो ससाज को करना ही चाहिए और इस निमित्त जो भी जिस रूप में हमारी सहायता करते हैं, उनके हम आभारी हैं। मैंने अब भारत में भी देखा है कि बहुतों ने बच्चों के नर्सरी स्कूल व्यापारी ढंग से खोल रक्खे हैं और ऐसे साफ सुथरे स्कूलों की (शिशु मन्दिरों की) प्रत्येक देश में आवश्यकता है।

आज मैं एक विशेष बात की ओर ध्यान दिलाना चाहता हूँ। प्रत्येक युग में सर्वसाधारण जनता में ईश्वर के अलग-अलग नाम लोकप्रिय हुए हैं। अंग्रेजी में ईश्वर के लिए दो शब्दों का प्रचलन रहा है—गॉड और लार्ड। ईश्वर अच्छा है, सत्य है (गुड, Good है,) इसलिए हम उसे गॉड (God) कहते हैं। बहुदेवतावाद में गाड शब्द बहुवचन में और स्त्री-लिंग में भी प्रचलित होता रहा था जैसे कि यूनानियों के साहित्य में गाड्स, गाडेस इन शब्दों के प्रथमाक्षर जी (g) को हम स्मॉल लेटर (Small Letter) से लिखते हैं, न कि कैपिटल (Capital) जी (G) से। हमारा देव, देवता, देवी शब्द भी इसी प्रकार का है। यह सभी वचनों और लिंगों में प्रयोग में आता है। सोच समझ कर इस शब्द का अर्थ करना पड़ता है कि कब यह अद्वितीय सर्वसृष्टा परमेश्वर के लिए प्रयुक्त हुआ है, और कब अन्यों के लिए। अँग्रेजी का दूसरा प्रचलित शब्द लार्ड (Lord) है। यह ईश्वर का भी वाची है, और ईश्वर से इतर का भी। हाईकोर्ट में वकील जज को भी (माई लार्ड) कहकर सम्बोधित करता है। क्वाइव भी लार्ड क्लाइव बना, हमारे कितनो वाय-सरायों की उपाधि लार्ड थी—केन्या में भी ऐसा था। हम-प्यार और निष्ठा से लार्ड क्राइस्ट, लार्ड कृष्ण, लार्ड बुद्ध भी कहते हैं। छोटे-छोटे रईसों को भी लैण्ड लार्ड कहा जाता है। वैदिक साहित्य में ईश औंर ईश्वर शब्द भी इसी प्रकार का है। निरुक्त में अर्थ को ईश्वर और आर्य को ईश्वर-पुत्र वस्तुतः इसी अर्थ में कहा गया है। (धनी सम्पन्न वैश्य को अर्य कहा जाता है उत शूद्र, उतार्यः)। अतः ईश और ईश्वर शब्द परमात्मा के लिए भी हैं, और साधारण धनी मानी या प्रतिष्ठित व्यक्तियों के लिए भी।

मुसलमानों के साहित्य में परमात्मा के नाम प्रचलित हैं—फारसी की दृष्टि से खुदा जो आत्मा शब्द के अनुरूप है। दूसरा शब्द अल्लाह है जो कहाँ से आया, इसकी व्युत्पत्ति क्या है—निश्चयपूर्वक अरबी वालों को भी नहीं मालूम। सृष्टि के पूर्व और सृष्टि के अनन्तर एकमात्र शेष (संस्कृत अलम्) रहने के कारण प्रभु को शायद अल्लाह कहा हो, या ओम् की तरह यह प्रतीक मात्र हो सकता है जिसकी अनेक व्युत्पत्तियाँ और अनेक अभिप्राय हैं।

हिन्दी भाषा में आजकल प्रभु के लिए कई शब्द प्रयोग में लोकप्रिय हो गए हैं—प्रभु, ईश्वर, परमात्मा, भगवान् (जो लार्ड के समान भगवान् शंकराचार्य, भगवान् बुद्ध, आदि मानवों के लिए और इसी अर्थ में भगवान् दयानन्द भी), और इन्हीं से बने जगदीश्वर, परमेश्वर शब्द। वैदिक युग और वैदिक साहित्य में परमेश्वर के लिए संख्या में सबसे अधिक शब्दों का प्रयोग होता रहा है। - प्रभु के अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव होने के कारण उसके नाम भी अनन्त हो सकते हैं। इन नामों में सबसे अधिक लोकप्रिय नाम इन्द्र था। यह वैदिक ऋचाओं का बड़ा प्यारा शब्द है। पौराणिकों ने इन्द्र शब्द को अपने सर्वोच्च स्थान से पतित कर दिया, इसलिए आगे के साहित्य में प्रभु को इन्द्र नाम से सम्बोधित करने में ग्लानि और लज्जा आने लगी। पंजाब वैदिक संस्कृति की मूलभूमि रहा, अतः आज तो पंजाबियों (जिनमें सिक्ख भी सम्मिलित हैं) के नाम के साथ इन्द्र शब्द बड़े प्यार से सम्बद्ध है, नैरोबी स्त्री आर्य समाज की मंत्राणी योगेन्द्रा है, उसके पुत्र वीरेन्द्र और राजेन्द्र है, कोई सुरेन्द्र है, कोई इन्द्रजीत हैं, कोई इन्दरसिंह है। प्रभु का बड़ा प्यारा नाम इन्द्र है। इन्द्र के समान ही प्रभु के प्यारे नाम अग्नि, और वरुण हैं।

ब्राह्मण युग में प्रभु के लिए प्रजापति नाम लोक-प्रिय हुआ, दार्शनिक युग में प्रभु के लिए आत्मा, पुरुष और ब्रह्म ये तीन शब्द प्रचलित हो गए। पर स्मरण रखना चाहिए कि प्रभु का एक मात्र नाम ओ३म् है, जो साहित्य में अव्यय होने के कारण और किसी व्यक्ति का नाम हो ही नहीं सकता।

ईश्वर के नामों के सम्बन्ध में इतना कहने के बाद अब मैं उस विषय पर आता हूँ, जो बहुधा सबसे सम्बन्ध रखता है। लोग पूछा करते हैं कि हमने मान तो लिया, कि ईश्वर का अस्तित्व है, ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव अनन्त हैं, उसके नाम भी अनन्त हैं। पर क्या बात है कि हमारा मन ईश्वर की पूजा में नहीं लगता, पूजा के समय मन भागता क्यों है, मन को हम वश में कैसे करें ? मन अपने वश में नहीं रहता, यह शिकायत सबको है, सबकी परेशानी सच्ची है। आपकी भी यह कठिनाई है, और बड़े-बड़े संन्यासियों और योगियों की भी। हम संध्या करने बैठते हैं, और जबान से तो सन्ध्या के सारे मन्त्र पढ़ जाते हैं पर रोज ही यह लगता है, मन्त्र तो पढ़े जा रहे हैं, पर मन कहीं और विचर रहा है। ऐसा क्यों होता है, इसके सोचने का हमें प्रयत्न करना चाहिए।

सन्ध्या के समय आपका मन भागता है, यह बात तो सच्ची है, पर जब आप शतरंज का खेल खेलते हैं, ताश खेलते (ब्रिज खेलते) हैं तो मन क्यों नहीं भागता ? ब्रिटेन में एक लार्ड थे, जिनका नाम सैण्डविच था—लार्ड सैण्डविच[1] जुए या शतरंज

---

1. Fourth Earl of Sandwich (1718.1792), said to have eaten slices of bread and mcat while gambling for 24 hours, with out leaking the gambling table.

के खेल में ऐसे तल्लीन रहते कि उन्हें न सोने की चिन्ता, न न खाने की। बीवी बुलाती हार जाती, पर वह खेल से उठकर खाने की मेज पर पहुँचते ही नहीं। बीवी की चिंता बढ़ने लगी। पति को भूखा कैसे रक्खा जा सकता था! उसने तरकीब निकाली, डबल रोटी के टुकड़ों के बीच में मक्खन, अण्डा, नमक लगाकर पति के पास रखना आरम्भ कर दिया। सैण्डविच महोदय जुए के खेल की चाल भी सोचते जाते और रोटी के टुकड़े भी मुख में रख लेते। इस प्रकार डबलरोटी जो खायी जाने लगी, उसका नाम ही सैण्डविच पड़ गया। जुए के खेल में लार्ड सैण्डविच का मन क्यों लगता था; चंचल होते हुए भी मन क्यों नहीं भागता था? इसका रहस्य सोचिये। क्रिकेट की कमेण्टरी सुनने के लिए भीड़ क्यों उतावली रहती है। टेस्टमैच देखने में मन क्यों लगता है? सिनेमा और सरकस के समय मन क्यों नहीं भागता?

मैं जब बच्चा था, तब गणित में मन नहीं लगता था, पर जब लगने लगा, तो अङ्कगणित या रेखागणित में घण्टों व्यस्त रहने लगा। ऐसा क्यों हुआ? मन लगाने के लिए रस पैदा करना पड़ता है, रस पैदा हो गया तो मन साथ देता है। दुनियाँ भर के प्यार के प्रति हमने रस पैदा किया है, पर प्रभु के प्यार का रस नहीं मिला। इसीलिए मन सन्ध्या के समय भागता है। जिसे ईश्वर के प्यार का रस नहीं मिला, उसे तो सन्ध्या रूखी लगेगी, जबरदस्ती तो मन नहीं लगाया जा सकता। सन्ध्या करने का ढोंग तो रच सकते हैं, पर वह जबरदस्ती की चीज नहीं है। आरम्भ में मन भागेगा, धीरे-धीरे इसका अभ्यास करो, जैसे गणित का, संगीत का, दर्शन शास्त्र का अभ्यास डाला जाता है। व्याकरण रूखा विषय है, भाषाशास्त्र

भी रूखा विषय है। पर अभ्यास से रस स्वतः उत्पन्न हो जाता है। प्रभु के प्यार के लिए भी धीरे-धीरे तप, अभ्यास और अन्य आकर्षणों और प्रलोभनों के प्रति वैराग्य इन भागों से हमें आगे बढ़ना पड़ेगा। जन्मना रुचि तो भाग्यवानों की ही होती है—अनेक पिछले जन्मों के संस्कारों से यह वैराग्य बुद्ध, दयानन्द, शंकराचार्य और थोड़े से बिरलों में ही था। शेष साधारण लोगों को धीरे-धीरे इस ओर अपने चरण आगे बढ़ाने पड़ेंगे। ईश्वर के प्यार में जब तुम्हारी आँखें कभी-कभी डबडबाने लगें, अथवा ओठों पर मुसकान आने लगे, तो समझना कि ईश्वर की बातों में तुम्हें रस आने लगा है। और तब हमारा मन सन्ध्या और उपासना में भी लगने लगेगा।

दशम प्रवचन

श्रुति-वचन

१

यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।
तन्मऽआ बध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥
(यजु० ३४।५२)

यत् । आ । अबध्नन् । दाक्षायणाः । हिरण्यम् । शत-अनीकाय । सु-मनस्यमानाः । तत् । मे । आ । बध्नामि । शत-शारदाय । आयुष्मान् । जरत्-अष्टिः । यथा । असम् ।

अर्थ—(यत्) जो (दाक्षायणाः) दाक्षायण लोग, चतुर-शिल्पी, (शतानीकाय) सौ सेनाओं वाले, शतानीक वाले (सुमनस्यमानाः) अच्छे विचारों वाले (हिरण्यं) सोने के आभूषण अबध्नम् बांधते हैं, (तद्) वह (मे) अपने लिए (बध्नामि) बाँधता हूँ, (शतशारदाय) सौ वर्ष आयुष्मान् जीने के लिए, और (यथा) जिससे मैं (जरदष्टिः) पूर्ण-आयु वाला (असम्) बनूँ ।

[जीवन को शतायु, और पूर्णायु करने वाला यह दाक्षायण-शतानीक हिरण्य क्या है ? महर्षि दयानन्द कहते हैं कि यह ब्रह्मचर्य-साधन है । परमात्मा को रचनात्मक शक्ति और सामर्थ्य का नाम दक्ष है, जो अदिति (माता प्रकृति के साथ सम्बद्ध है । इस मन्त्र का बहाना करके लोग दाहिने हाथ में सोने का ताबीज बाँधने लगे ।]

वेद में धातुओं का उल्लेख

२

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्च मे श्यामं च मे लोहं च मे सीसं मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।

(यजु० १८।१३)

अश्माः । च । मे । मृत्तिका । च । मे । गिरयः । च । मे । पर्वताः । च । मे । सिकताः । च । मे । वनस्पतयः । च । मे । हिरण्यम् । च । मे । अयः । च । मे । श्यामम् । च । मे । लोहम् । च । मे । सीसम् । च । मे । त्रपु । च । मे । यज्ञेन । कल्पन्ताम ।।

अर्थ—(यज्ञेन) यज्ञ से (कल्पन्ताम्) निम्न की वृद्धि, संवृद्धि, करूँ—(अश्मा) पत्थर, (मृत्तिका) मिट्टी, (गिरयः) गिरि, पहाड़ियाँ, (पर्वतः) बड़े पर्वत, पहाड़, (सिकता) बालू, (वनस्पतयः) वन में उगने वाले वृक्ष, (हिरण्यं) सोना, (अय) काँसा, या मिश्रधातु, (श्यामम्) तांबा, (लोहं) लोहा (सीसं) सीसा, और (त्रपु) राँगा या टिन ।।

३

पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षं छंदो द्यौश्छंदः समाश्छंदो नक्षत्राणि छंदो वाकछंदो मनश्छंदः कृषिश्छंदो हिरण्य छंदो गौश्छंदोऽजाश्छंदोऽश्वश्छंदः ।।

(यजु० १४।१९)

पृथ्वी । छन्दः । अन्तरिक्षम् । छन्दः । द्यौः । छन्दः । समाः । छन्दः । नक्षत्राणि । छन्दः । वाक् । छन्दः । मनः । छन्दः । कृषिः । छन्दः । हिरण्यम् । छन्दः । गौः । छन्दः । अजाः । छन्दः । अश्वः । छन्दः ।।

अर्थ—निम्न छन्द (आनन्द देने वाले) हैं—

पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ, (समाः) वर्ष, नक्षत्र, वाणी, मन, (कृषिः) खेती, (हिरण्यं) भेड़. (गौः) गाय (अजाः) बकरी, और (अश्वः) घोड़े।

[मनुष्य के अतिरिक्त चार ग्राम्य पशु हैं—गाय, घोड़ा, भेड़ और बकरी, अतः गाय, बकरी और घोड़े के साथ पड़ा हुआ शब्द हिरण्यः का अर्थ भेड़ हैं।]

४

त्रीणि उष्ट्रस्य नामानि ॥ (१३)
हिरण्यं इत्येके अब्रवीत् ॥ (१४)
द्वौ वा ये शिशवः ॥ (१५)
नीलशिखण्डवाहनः ॥ (१६)

(अथर्व० २० ।१३२)

(उष्ट्रस्य) उष्ट्र, ऊँट, या भेड़ के तीन नाम हैं। इनमें से हिरण्य है, ऐसा कुछ लोग कहते हैं।

अन्य दो नाम नीलशिखण्ड और वाहन हैं। ये दो नाम उष्ट्र (भेड़) के बच्चों के हैं।

———

यज्ञ और मानव-विकास

वेद पारायण यज्ञ का यह दसवाँ दिन था,— २६ जुलाई १९७७, और श्री देवेन्द्र भीम-भट इस दिन के यजमान थे—बड़े निष्ठावान् और श्रद्धालु। उनकी पत्नी बड़ी शिक्षिता, और बड़े प्यारे बच्चे। देवेन्द्रजी एकाउण्टेन्सी की प्रैक्टिस करते हैं, आर्य प्रतिनिधि सभा नैरोबी के प्रधान श्री हरबंश राय शाही का भी यही व्यवसाय है। अपने देश में चार्टर्ड एकाउण्टेन्ट्स जैसे संस्थाओं के हिसाब का निरीक्षण करते हैं, कुछ-कुछ वैसा, और साथ ही ये लोग इनकम टैक्स के मुकदमों में जिरह भी करते हैं। यजमान और उनके परिवार को मैंने आशीर्वाद दिया। यजुर्वेद के जिस ३४वें अध्याय से आज आहुति डाली गयीं उसमें दाक्षायणा-हिरण्यं का उल्लेख था। पंडित वंशीधर जी ने इन मन्त्रों की व्याख्या करते हुए कहा कि वैदिक युग में सोने के बाजूबन्द बाँधने की प्रथा थी, और इस अध्याय के जिन मन्त्रों में हिरण्य का उल्लेख हैं उससे भी इसकी पुष्टि होती है। सोने के ये आभरण रोगों से हमारी रक्षा करते हैं।

स्वर्ण की बात करते हूए प्रवचन में मैंने कहा कि भारतवर्ष से सारे संसार को हजारों वर्ष से सोना जाता रहा है। दक्षिण अफ्रीका के बन्दरगांह पोर्ट एलिजेबेथ के म्यूजियम को जब मैं देखने गया तो वहाँ एक पट्टिका देखी जिस पर लिखा था, कि

जॉनेसबर्ग की सोने की खानों का पता लगने के पूर्व समस्त संसार को सोना भारत से जाता था। लंका और अलकापुरी की स्वर्ण-सम्पन्नता तो कहानियों में प्रसिद्ध रही है। सोने के लिए लोकप्रिय वैदिक शब्द हिरण्य है। यजुर्वेद के १७वें अध्याय में ६ धातुओं का विशेष उल्लेख है—हिरण्य, अयस् (जर्मन Eisen लोहा), श्याम, लोह सीस और त्रपु। चाँदी अपने देश में कम थी—बाहर से आती थी—इसके लिए साहित्य में चन्द्र, रजत अर्जुन और रूप (रौप्य, और इसी से रुपया) शब्दों का प्रयोग होता रहा है।

है तो प्रसंग से बाहर, पर एक बात मैं कह दूँ, कि वैदिक साहित्य में हिरण्य शब्द का अर्थ उष्ट्र भी है (उष्ट्र आजकल तो ऊँट को कहते हैं, पर वैदिक मन्त्रों में हिरण्य और उष्ट्र शब्द भेड़ (अवि) के भी पर्याय हैं। अथर्ववेद के एक मन्त्र में कहाँ है कि उष्ट्र के तीन नाम हैं, जिनमें से एक हिरण्य भी है (हिरण्य-मेके)—भेड़ के तीन नाम ये हुए, अवि, हिरण्य और उष्ट्र। यजुर्वेद के एक मंत्र में प्रसंग से स्पष्ट है कि हिरण्य का अर्थ भेड़ है।

(हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दो ऽजाश्छन्दोऽश्वश्छन्दः—यजु० १४।१६)

मानवीय सभ्यता के विकास में कुछ मानव-आविष्कारों ने विशेष सहायता दी। ये आविष्कार थे—(१) आग की खोज, (२) पशुओं को पालतू बनाना—ग्राम्य पशु—घोड़ा; गाय, भेड़, और बकरी, (३) अन्नों की कृषि, और (४) वस्त्रों का प्रचलन। वैदिक मन्त्रों की प्रेरणा पाकर, मनुष्य ने अरणियों को घिस कर आग तैयार करना सीखा। इस अग्नि से उसने यज्ञ रचे, अग्नि की सुरक्षा आर्यों ने अपना कर्त्तव्य माना। पारसियों ने प्रज्वलित

अग्नि की परम्परा को अपने मन्दिर में विशेष स्थान दिया, गिरजों में यह अग्नि मोमबत्तियों के रूप में पहुँची, और अपने देश में घृत के दीप जले। गाय और गाय के दूध से परिचय होने पर वैदिक युग में दूध से अनेक पदार्थ तैयार किए गए—दूध और घी से यज्ञ किया जाने लगा। यजुर्वेद और शतपथ ब्राह्मण के अनेक गव्य पदार्थों का विस्तृत उल्लेख है—घृत, नवनीत, और आज्य में अन्तर भी बताया गया। यज्ञ अपूर्ण रहेगा, जब तक हमारे यज्ञों में अन्नों की आहुतियाँ न दी जायँ। यजुर्वेद के १७वें अध्याय में अन्नों की एक सूची है—यव (जौ), धान, तिल, मुद्‌ग, माश, अणव, गोधूम (गेहूँ) आदि। सम्पत्तिशाली भाग्यवान् व्यक्तियों को यवमन्त, धनवान् (जिसके घर में धन-धान्य, चावल और चावल से बने पदार्थ प्रचुर मात्रा में हैं), और कुशवन्त (जिसके घर में पशुओं को खिलाने का चारा कुश, हो) कहते हैं। कुश से ही कुशल शब्द निकला है। कुशल तो उसी के घर में समझना चाहिए जिसके घर में पशुओं को खिलाने के लिए घास, भूसा काफी हो।

केवल यही बात नहीं है कि यज्ञ से वायु की शुद्धि होती है, रोग दूर होते हैं और वैदिक मन्त्रों की रक्षा होती है, यज्ञ में डाले गए पदार्थ मनुष्य के उन आदि-आविष्कारों की याद दिलाते हैं, जिनके आश्रय पर समाज का विकास हुआ। तिल सबसे पहला तिलहन है, जिससे मनुष्य ने तेल निकाला। बाद को तो और बीजों और अन्नों से भी तेल निकले, पर तैल शब्द आरम्भ में तो पदार्थ के लिए ही प्रयोग में आया।

महर्षि दयानन्द के हम बड़े आभारी हैं, कि उन्होंने हमें फिर से यज्ञ करना सिखाया। हमारे देश का एक तीर्थ-स्थान पुरी है। इसी वर्ष जनवरी मास में मैं पुरी गया था। उड़ीसा

के प्रथम मुख्यमन्त्री (उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल) बाबू विश्वनाथ दास का मुझ पर विशेष स्नेह रहा है। वहाँ जाने पर लगा कि जगन्नाथपुरी में यज्ञ या हवन की प्रथा ही विलुप्त हो गयी। बाबू विश्वनाथ दास के परिवार में एक युवक इन्जीनियर श्री प्रियव्रत दास हैं। वे और उनकी पत्नी आर्य समाज के काम में अच्छी रुचि लेते हैं। उन लोगों ने हवन यज्ञ और शुभ अनुष्ठानों के अवसर पर वैदिक मन्त्रों के पाठ की प्रथा फिर से आरम्भ की है।

यज्ञ भारत का ही नहीं, समस्त संसार के इतिहास में सबसे पुराना कर्मकाण्ड है। मनुष्य को न जाने कैसे और कहाँ से यह पागलपन सूझा कि उसने यज्ञ में पशुओं की बलि देनी आरम्भ की—गाय और घोड़े की। यज्ञ तब से बदनाम हो गये। महात्मा बुद्ध ने और महावीर स्वामी ने इसलिए यज्ञ का विरोध किया। वेद मंत्रों में तो वाक्य थे—मा मा हिंसीः, यजमानस्य पशून् पाहि (जिनका आपने पारायण किया है) जिनका अर्थ पशुओं की रक्षा करना है। महात्मा बुद्ध ने वेदों का भी विरोध किया और ईश्वर का भी और ऐसे वर्ग का भी जहाँ पशु बलि देने वाले यजमान अगले जन्म में जाने को थे। पशु बलि से प्रसन्न होने वाले ईश्वर में क्रूर, निर्दयी असुर ही आस्था रख सकते हैं। स्वामी दयानन्द की हमारे ऊपर बड़ी कृपा थी। उन्होंने स्पष्ट घोषित किया कि वेद ऐसे यज्ञ का प्रतिपादन नहीं करते जिसमें पशु बलि दी जाये। इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने फिर से आस्तिकता, वेद और यज्ञ में आस्था उत्पन्न करायी, आर्य समाज के प्रयत्न से यज्ञों की प्रथा अब तेजी से भारत में लोकप्रिय हो गयी है, और आपको बधाई है कि आप भारत से ३ हजार मील की दूरी पर इस प्रथा को लाये हैं। यज्ञों के

माध्यम से हमारे घरों में अब संस्कार भी होने लगे हैं—नामकरण संस्कार, मुंडन संस्कार, विवाह संस्कार आदि सभी। हिन्दुओं ने तो देवी-देवताओं के मन्दिरों में मूर्तियों के सामने पुजारियों से संस्कार कराने आरम्भ कर दिए थे, और मुंडन के समय तो देवी की मूर्ति पर बकरे की बलि भी चढ़ाने की कुप्रथा डाली थी।

स्वामी दयानन्द ने यज्ञ और संस्कार की फिर से जो प्रथा चलाई, वह हमारे गौरव की वस्तु है। मुझे कितनी प्रसन्नता यह देखकर होती है कि यज्ञ के अवसर पर वेदपाठ हमारी नारियाँ और भद्र महिलायें कर रही हैं। आपका मंत्रपाठ मुझे बड़ा अच्छा लगता है। इस वेद-पारायण यज्ञ में किसी से नहीं पूछा गया कि आपकी जाति बिरादरी क्या है, ब्राह्मण हो कि चाण्डाल। सभी मिलकर वेद पाठ कर रहे हैं। स्वामी दयानन्द न होते तो यह चत्मकार हमें देखने को न मिलता, कितनी अच्छी बात है कि अब तो पुरोहिताई का काम महिलायें भी करने लगी हैं। स्वामी दयानन्द ने ही हमें बताया कि प्रभु की वाणी-वेद की ॠचायें—पढ़ने का सबको अधिकार है। यजुर्वेद पारायण करते समय आपने किसी दिन यह मंत्र पढ़ा था—"यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः" —इसका सच्चा अर्थ स्वामी दयानन्द ने बताया और वेद पढ़ने का पवित्र अधिकार मानुष्यमात्र को दिया। प्रभु की कृपा और ॠषि की तपस्या का फल है कि अब तो दक्षिण अफ्रीका, मॉरिशस, गायना, ट्रिनिडाड, सूरिनाम—दूर-दूर तक देशों में यज्ञशालायें भी बन गयी हैं, और यज्ञ करने की प्रथा लोकप्रिय होती जा रही है।

प्रभु की कृपा से और आर्य समाज के माध्यम से आप वेद की ज्योति लेकर इस देश में आये हैं—यहाँ से ब्रिटेन, कनाडा

और अमरीका के संयुक्तराष्ट्र में भी आप पहुँच गए हैं। इस ज्योति का प्रकाश सब को बाँटिए। ज्योति या दीपक को ढाँक कर रखियेगा, तो इसकी ज्वाला बुझ जायेगी। वेद की ज्योति गोरे लोगों के लिए भी है, काले लोगों के लिए भी है, केन्या देशवासियों के लिए भी और कनाडा वासियों के लिए भी। अभी तक तो आपने भारतीयों के बीच में काम किया है, अब प्रभु का प्रसाद दूसरों को भी बाँटिये। आपने पाठशालायें खोलीं—उनमें भारत से आये हुए बालक पढ़ते हैं, और केन्या के मूल निवासियों के बालक भी। आपके चिकित्सालय से भी सबको दवा मिलती है। आपकी दूकानों से भारतीय भी वस्तुएँ खरीदते हैं, और केन्या के अन्य लोग भी। आपके शक्कर, कपास, चाय और कॉफी के कारखाने और फल-फूल, शाक-भाजी के खेत सबके लिए हैं, तब फिर आपने-अपने मन्दिर और अपनी यज्ञशालायें, अपने सत्संग यहाँ के रहने वालों के लिए भी क्यों नहीं खोले। दयानन्द होम के केन्यावासी बच्चों को यज्ञ के समय बैठा हुआ देख कर मुझे प्रसन्नता होती है।

नैरोबी आर्य समाज की मैं सर्वत्र प्रशंसा करता हूँ। इस समाज के सम्बन्ध में तो मेरे बहुत से सपने हैं। संसार की सबसे समृद्ध आर्य समाज तो नैरोबी की है। ईश्वर करे, कि इस समाज की उत्तरोत्तर वृद्धि हो और आर्य समाज के विश्व-साहित्य के प्रकाशन और प्रसारण का यह केन्द्र बने—यह मेरी अभिलाषा है, और मेरा सपना है। आप सबको बहुत आशीर्वाद।

———

श्रुति-वचन

१

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस-सिद्धिः स धर्मः

(वैशेषिक १।१।२)

(यतः) जिससे (अभ्युदय) लौकिक ऐश्वर्य और (निःश्रेयस) पारलौकिक आनन्द की (सिद्धि) सिद्धि हो, वह धर्म है।

धर्म वह है जिससे आज का जीवन, वर्त्तमान का जीवन, अच्छा हो, और कल का जीवन, भविष्य का जीवन और भी अधिक अच्छा हो।

जिससे अभ्युदय अर्थात् ऐहलौकिक सुख, एवं जीवन्मुक्ति और निःश्रेयस (मोक्ष) की सिद्धि हो, वही धर्म है।

२

चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः

(चोदना) वेद वाक्यों से अनुमोदित (या लक्षित) होने वाला (अर्थः) अंतिम उद्देश्य (निःश्रेयस) दिलाने वाला जो भी है, वह धर्म है।

वेद ईश्वरीय ज्ञान है, श्रुतियों से मनुष्य के वर्तमान और भविष्य को जो भी उत्तम बनावे वह धर्म है।

३

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥ (मनु० ६।९२)

१. (धृतिः) धैर्य रखना, २. (क्षमा) निन्दा-स्तुति, हानि-लाभ आदि दुःखों में सहनशील रहना, ३. (दमः) मन को वश में रखना, धर्म में प्रवृत्त कराना, और अधर्म से अलग रखना, ४. (अस्तेयं) चोरी को मन से, वचन से, कर्म से त्यागना, ५. (शौचं) अन्दर और बाहर की शरीर की पवित्रता, ६. (इन्द्रिय-निग्रह) इन्द्रियों को वश में रखना, सत्कार्यों में लगाना, और बुरे कामों से रोकना, ७ (धीः) बुद्धि को पवित्र करना, और बुद्धि के अनुकूल काम करना, ८. (विद्या) यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना, ९. (सत्यं) मनसा वाचा कर्मणा, सत्य का पालन करना और १०. (अक्रोध) क्रोध को छोड़ना, धर्म के ये दश लक्षण हैं।

स्वामी दयानन्द ने "धृति" के पहले "अहिंसा" और जोड़ कर धर्म के ११ लक्षण बताये हैं।

४

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च।
हन्तते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥

(मनु० ८।१४)

जिस सभा में अधर्म से धर्म, असत्य से सत्य सब सभापदों के देखते हुए मारा जाता है, उस सभा में सब मृत्तक के समान हैं। यह समझना चाहिए कि उनमें कोई भी नहीं जीवित है, सभी मरे हुए हैं।

५

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद् धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽबधीत् ॥

(मनु० ८।१५)

जो धर्म को मारता है, धर्म उसको मार डालता है, जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है। इसलिए धर्म का हनन कभी न करे, इस डर से कि मारा हुआ धर्म कहीं हमें ही न मार डाले।

६

अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।

(योग २।३०)

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये पाँच यम हैं। यमों का आचरण समाज की दृष्टि से (Public discipine) किया जाता है। ये समष्टि-गत हैं।

७

शौचसन्तोष-तपः-स्वाध्यायेश्वर-प्रणिधानानि नियमाः।

(योग २।३२)

शौच, सन्तोष, तपः, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये पाँच नियम हैं।

नियमों का आचरण स्व-निमित्त से (personal discipline) किया जाता है। वे नियम व्यक्तिगत हैं।

———

धर्म का स्वरूप

२२ अगस्त १९७७ को डच देश के के० एल० एम० प्लेन से मैं दार-एस-सलाम से चलकर ९ बजे प्रातः के लगभग नैरोवी पहुँचा। यह विमान यात्रा वैसे तो लगभग ५० मिनट की थी, पर नैरोबी के एअर ट्रेक्ट पर एक विमान पहिये की खराबी के कारण रास्ता रोके खड़ा था, इसलिए हम लोगों के वायुयान को अन्तरिक्ष में ही काफी देर तक चक्कर लगाने पड़े। नैरोबी एअर-पोर्ट पर उतर कर मैंने अपने सामान की प्रतीक्षा की—एक सूटकेस था और एक हैंड बैग। हैंड बैग तो मिल गया, पर सूटकेस गायब था। मेरी पुस्तकें, कपड़े और अन्य आवश्यक चीजें इसी सूटकेस में थीं। खोज करने पर भी जब न मिला, तो मैंने एअरपोर्ट के अधिकारियों को विधिवत् रिपोर्ट लिखा दी। मैंने तो समझ लिया था कि अब कपड़े वापस नहीं मिलेंगे—एक धोती, एक लंगोटी और बनियाइन से जो मैं पहने था, काम चलाना पड़ेगा। मुझे २३ तारीख को मोम्बासा पहुँचना था। एक नई लुंगी खरीदी और हैंडबैग के साथ २३ तारीख की शाम को नैरोबी से मैं मोम्बासा आ गया। २५ तारीख तक मोम्बासा रहा। २७ तारीख को नैरोबी के के० एल० एम० के दफ्तर में गया, तो पता चला, कि मेरा सूटकेस योरूप के लगभग सभी प्रधान देशों की यात्रा करके अब नैरोबी

आ गया है। सूटकेस सही सलामत मुझे मिल गया। मेरी चिन्ता दूर हुई।

मोम्बासा केन्या का सबसे प्रसिद्ध बन्दरगाह है। लगभग ५०० वर्ष पहले पुर्तगाल का प्रसिद्ध यात्री वासको-डि-गामा अपने देश से भारत की खोज के लिये जब निकला तो वह ७ अप्रैल १४९८ को मोम्बासा रुका था। मोम्बासा की मेरी यह तीसरी यात्रा थी—१९७१ में जब मैं पहली बार आया, तो मैंने मिलिन्दी के निकट वह स्थान देखा, जहाँ वास्को-डि-गामा की यात्रा की स्मृति में समुद्र तट पर छोटा-सा स्तूप बना हुआ है। मोम्बासा के समुद्री तट पर मैंने वह पुराना बन्दरगाह भी देखा, जहाँ से धाव (Dhow) में पकड़-पकड़ कर हब्सी गुलाम बेचे जाने के लिये बड़ी क्रूरता से अरब देश और जंजीबार द्वीप को भेजे जाते थे।

मोम्बासा आर्य समाज की स्थापना १० मार्च १९०५ को श्री काशीराम बैरी के घर पर हुई थी। आर्य परिवारों के घरों में बारी-बारी से साप्ताहिक सत्संग लगने आरम्भ हुये। १९०८ में शिवरात्रि के दिन विधिवत् आर्य समाज का प्रथम निर्वाचन हुआ। श्री काशीराम जी प्रधान बने, बन्शी लाल जी मन्त्री बने, सभासदों की कुल संख्या १८ थी। ४०० रुपये से पुरानी किलिन्-डिनी रोड पर एक कच्चा मकान खरीद लिया गया। १९११ में इस मकान की मरम्मत की गई। भारतीय बच्चों की शिक्षा के लिये इसी मकान में १९१३ में एक आर्य कन्या पाठशाला भी खोली गई, जिसमें गुजराती भाषा और वैदिक धर्म की बातें सिखायी जाने लगी। १९१४ से १९१९ के वर्ष आर्य समाज मोम्बासा के लिये विपदा के थे। योरूप में महायुद्ध चल रहा था और अंग्रेजी शासन की आँखों में आर्य समाज के सदस्यों की

गतिविधि में राजविद्रोह की भावना दिखायी दे रही थी। १७ अगस्त १९१५ को श्रद्धालु आर्य, आर्य समाज मन्दिर में एकत्रित होकर संध्या, हवन और प्रार्थना कर रहे थे कि अचानक ही अंग्रेजों की सेना ने आर्य समाज मन्दिर को घेर लिया, चारों ओर सशस्त्र सेना तैनात कर दी गई, आर्य समाज में ताला लगा दिया गया और सम्पत्ति पर फौजी अधिकार हो गया। तत्काल फौजी अदालत बैठी और श्री बी० आर० शर्मा को १४ वर्ष का कारावास दण्ड दिया गया, कुछ लोगों को देश से निर्वासित किया गया। पंडित लाल चन्द्र शर्मा पर कई अन्य आरोप भी लगा दिये गये और उन्हें फाँसी की सजा का हुक्म हुआ। ईश्वर की कृपा थी कि शासकों और आर्य समाज के सदस्यों के बीच में धीरे-धीरे सद्भावना उत्पन्न हुई। चीफ जस्टिस हैमिल्टन ने सारे मामले पर फिर से विचार किया। योरुप का युद्ध समाप्त हुआ और १९१८ में विपदा के बादल हटे। बी० आर० शर्मा और लाल चन्द शर्मा अब भी (१९७७) जीवित हैं। मैं अपनी यात्राओं में इन वृद्ध आर्यसेवियों से मिलता रहा हूँ और मुझे उनका स्नेह भी प्राप्त हुआ है। १९१८ में ये लोग जेल से छूटे और आर्य समाज के भवन की चाभियाँ आर्य समाज के अधिकारियों को लौटा दी गईं। आर्य समाज के संघठन का कार्य फिर से आरम्भ हुआ। नया निर्वाचन हुआ। इस आर्य समाज में गुजराती और पंजाबी भाई बड़े स्नेह से आर्य समाज का कार्य करते रहे। जंजीबार और दार-एस-सलाम की आर्य समाजों के समान मोम्बासा की आर्य समाज भी बम्बई की आर्य प्रतिनिधि सभा से सम्बद्ध रही है।

१९२१ में आर्य कन्या पाठशाला फिर से विधिवत् काम करने लगी। श्री बी० एच० यौवनपुत्रा जी ने इस कार्य में

विशेष सहयोग दिया। श्री विट्ठल भाई यौवनपुत्रा जी मुझ पर बराबर स्नेह रखते आये हैं पिछले वर्ष (१९७६) में भी मैं उनके घर किसूमू (Kisimu) नगर गया था। इस वर्ष जब में पूर्वी अफ्रीका आया, तो पता चला कि ४ फरवरी १९७७ को उनकी मृत्यु हो गयी। इस गुजराती महानुभाव को आर्य समाज से बड़ा स्नेह रहा है। एक-दो दिन में मैं किसूमू जाने वाला हूँ, पर खेद है, मुझे उनसे भेंट न होगी—ईश्वरेच्छा इस वर्ष जब मैं केन्या आया तो श्री अच्छरादास, जस्टिस 'चानन सिंह और विट्ठल भाई यौवनपुत्रा—इन तीनों के दिवंगत होने के समाचार मिले। तीनों ही इस देश की आर्य समाज के गौरव थे।

१९२५-२६ में फिर आर्य समाज मोम्बासा की नयी विपदाओं का सामना करना पड़ा। आर्य समाज का मकान भी रिहायशी मकान के रूप में १४ रुपये मासिक किराये पर उठा दिया गया। १९२८ में भारत से कतिपय ऋषि दयानन्द के भक्त मोम्बासा आये और उन्होंने आर्य समाज का मकान खाली करा लिया। आर्य समाज फिर प्रगति करने लगा।

दानवीर श्री नानजी भाई कालिदास मेहता के नाम से आर्य जगत् परिचित है। उन्होंने आर्य सभासदों को प्रोत्साहित किया कि अच्छी जमीनें ख़रीद कर आर्य संस्थाओं का भवन तैयार कराये। सदस्यों ने एक-एक मास का वेतन दान में दिया। ४ हजार शिलिंग का चन्दा इस प्रकार प्राप्त हुआ, ५ हजार शिलिंग नानजी भाई ने अपने पास से दिये। मेम्बेतयादी रोड पर १८० × २४६ फुट का बड़ा-सा प्लाट सेठ नानजी भाई ने २७ हजार शिलिंग में ले लिया। इस बड़े प्लाट में से एक तिहाई जमीन आर्य समाज को मिली, और शेष नानजी भाई

ने अपने पास रख ली। आर्य समाज ने इस भूमि पर विश्राम-गृह (रेस्ट हाउस) बनाया जिसकी नींव नानजी भाई की पत्नी के हाथ से २६ मई, १६३१ को रक्खी गयी और भवन का उद्घाटन १६३३ में सेठ नानजी भाई ने स्वयं किया। इसी अवसर पर सेठ जी ने प्लाट की अपने हिस्से की जमीन भी आर्य समाज को दान कर दी। इस विस्तृत भूमि पर आर्य समाज का विस्तृत हॉल है (लगभग ७० फुट लम्बा और २५ फुट चौड़ा जिसमें एक पार्श्व में स्टेज भी बनी है)। इसी भूमि पर १६३३ में सुन्दर यज्ञशाला भी वनाई गई। बच्चों का एक नर्सरी स्कूल भी चल रहा है। एक स्कूल की इमारत २००० शिलिंग मासिक पर दूसरी संस्था के स्कूल के लिए किराये पर उठा दी गयी है। १६५८ में मोम्बासा की आर्य समाज ने स्वर्ण जयन्ती मनायी थी, और इसने अपने ५० वर्षों का इतिहाम भी प्रकाशित किया।

आजकल श्री रवीन्द्र कुमार मागोन आर्य समाज के प्रधान हैं। ये और इनकी पत्नी दोनों ही दन्तचिकित्सक हैं। आर्य समाज के मन्त्री श्री पुरुषोत्तम राव (दक्षिण भारत के) हैं, जिन्हें संस्कृति साहित्य और भारतीय संस्कृत का अच्छा ज्ञान है, और भारत से इस देश में गणित पढ़ाने के लिए आये हुए हैं।

मोम्बासा में इस वर्ष मैंने दो व्याख्यान दिए। दोनों में भारतीय दूतावास के मोम्बासा स्थानीय अध्यक्ष श्री पाठक जी भी आते रहे। केन्या के सभी नगरों में भारतीयों की संख्या कम होती जा रही है और आर्य समाजी परिवार तो बहुत कम रह गये हैं—लंदन चले गये या केनाडा के वैंकोवर नगर में बस गए। अतः स्वाभाविक है कि हाजिरी कम होने लगी है।

पंजाब के लोग ही केन्या में आर्य समाज के कार्यों में रुचि लेते हैं। भारतीय सरकार द्वारा भेजे गये विशेषज्ञ भी इस देश में आ जाते हैं। आर्य समाज में भारत के आये हुए श्री लक्ष्मण स्वरूप भटनागर आर्य समाज के भवन में ही रहते हैं, और काफी देखभाल करते है। आर्य समाज के परिवारों में ही एक सब्बरवाल परिवार हैं, जिसके एक तरुण युवक विमान पाइलट हैं, १९७१ में जब मैं यहाँ आया था तब उसके विमान के साथ दुर्घटना हो गयी थी। विमान पर्यवेक्षकों ने कठिन तपस्या से इनका पता चलाया, और उद्धार किया। फिर से मानों इनका नवजन्म हुआ। इस वर्ष भी इनसे मेरी भेंट हुई। इस घटना की स्मृति में (इस वर्ष भी) इसके पिता ने आर्य समाज के साप्ताहिक अधिवेशन में यज्ञ कराया और सदस्यों को भोजन की दावत दी। खाना खिलाना केन्या देश में कोई समस्या नहीं है, क्योकि भारतीय काफी सम्पन्न हैं। आर्य समाज के बड़े-बड़े प्रांगणों और व्याख्या कक्षों में सैकड़ों व्यक्तियों को को भोजन कराने की सुविधा है। गुजरातियों, सिक्खों और दूसरे लोगों के भी सभी बड़े नगरों में मन्दिरों के साथ सम्बद्ध हॉलों में भोजन कराने की व्ययख्या है।

मैंने मोम्बासा की आर्य समाज में दो व्याख्यान दिये--पहला व्याख्यान धर्म के स्वरूप पर था, और दूसरा प्रभु के प्रति प्यार पर। वैदिक धर्म संसार का प्राचीनतम धर्म है। मानव धर्म का ही दूसरा नाम वैदिक धर्म या धर्म है। एकमात्र मानव का ही धर्म होता है, पशुओं का नहीं। मानव के ही संबंध में कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, पुण्य-पाप, धर्म-अधर्म का प्रश्न उपस्थित होता है क्योंकि यही कर्म-प्रधान योनि है, अन्य पशुओं की योनियाँ भोग-प्रधान हैं। मनुष्य योनि के व्यक्तियों में ही ज्ञानी-अज्ञानी,

मूर्ख-पण्डित, अमीर-गरीब, देवता और असुर इस प्रकार के भेद पाये जाते हैं. पशुओं में किसी को न पुण्यात्मा कहा जाता है, न अधम पापी, गरीब घर वाला कुत्ता न गरीब कहा जाता है न अमीर घरों में पले कुत्ते अमीर कहे जाते हैं। न शेर हिंसा प्रवृत्ति के लिए पापी है, और न गाय इस दृष्टि से पुण्यात्मा। प्रभु ने मनुष्य को ही सद्-असद् में विवेक करने वाली बुद्धि दी है, । इसी विशेषता के कारण मनुष्य में धर्माधर्म का प्रश्न उपस्थित होता है। घड़ी दिन भर चलती और इस दृष्टि से अपना काम करती है, पर उसका कर्म न सकाम है न निष्काम मनुष्य का यह सौभाग्य है कि उसके संबंध में ही धर्माधर्म का प्रश्न उठता है। यदि वह पुरुषार्थ करे तो वह ऋषि-महर्षि बन सकता है, यदि वह पतित हो जाए तो दानव, असुर, राक्षस या महादुष्ट कहला सकता है। पशु न राक्षस है न देवता। धर्म केवल मनुष्य के लिए है—योग, जप, तप, सत्य श्रद्धा; दीक्षा और दक्षिणा ये सब मनुष्य के लिए हैं।

धर्म केवल एक है—मानव धर्म. मनुष्य मात्र का धर्म—धर्म नैसर्गिक है, मनुष्य:का दिया नहीं, इसी अभिप्राय से यह ईश्वरीय है। वेद से लेकर महाभारत काल तक के ऋषियों के साहित्य में जिस धर्म का प्रतिपादन है, वह धर्म मनुष्यमात्र का है, न वह भारतीय है, न यूरोपीय न प्राच्य न पाश्चात्य। वह धर्म सब युगों के, सब कालों के लिए एक-सा है। न वह सतयुगी है, न कलयुगी, वह सनातन हैं, शाश्वत है, सभी मनुष्यों के लिए है। वेदों ने इस धर्म की ओर ही हमारे लिए संकेत किया, ऋषियों ने इस धर्म की हमारे लिये व्याख्या की। बुद्धि संमत और ज्ञान संमत होने से इस धर्म को हम सभी वैदिक धर्म भी कहते हैं अन्यथा इस धर्म का कोई नाम नहीं

है, —यह धर्म न किसी व्यक्ति के नाम पर है, न किसी ऋषि के नाम पर; प्रभु ही इसका प्रवर्त्तक है, न कोई दूत या पैगम्बर के नाम पर यह है. न अवतार या अवतारी पुरुष के नाम पर। व्यक्तियों के नाम पर तो सम्प्रदाय चलते हैं न कि धर्म। संभवतया महात्मा बुद्ध और महाबीर स्वामी के समय से सम्प्रादय-वाद का जन्म हुआ, और ये धर्म बौद्ध और जैन धर्म कहलाये। जरथुस्त्र, ईसा मूसा और मुहम्मद के समान व्यक्तियों ने अपने को ईश्वर का पैगम्बर बताया, और उन लोगों द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदायों का नाम व्यक्तियों के नाम पर पड़ा। चारों वेदों का प्रादुर्भाव अग्नि, वायु आदित्य और अंगिरा के माध्यम से हुआ, किन्तु इनके नाम पर किसी धर्म का नाम न पड़ा, न किसी ऋषि ने अपने नाम पर कोई धर्म प्रसारित किया। हमारा धर्म न वैष्णव धर्म है, न शैव धर्म। वेद में प्रतिपादित विष्णु या शिव की न कोई मूर्ति है; न उसका मानव व्यक्तित्व। जिनकी पत्नी भी हो, पुत्र भी, मूर्ति भी हो और विशेष निवास स्थान भी या जिसका वाहन हो और अनुचर भी ये धर्म नहीं, शाश्वत सत्य नहीं, धर्म की विकृतियाँ हैं। आर्य समाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द ने हमें इन्हीं विकृतियों से सावधान रहने को कहा है। यह विकृतियाँ शाश्वत या सनातन धर्म नहीं है। मानव इतिहास के पतन-काल की ये अति-आधुनिक विकृतियाँ हैं।

वेद के प्रति निष्ठा तो भारतीय समाज में सदा रही, पर वेदों का परिहास और परित्याग हमारे साम्प्रदायिक धर्मों ने किया। भागवत सम्प्रदाय ने घोषित किया कि वेद, यज्ञ, योग और उपासना की वैदिक विधियाँ सतयुग के लिए थीं, कलियुग में तो श्रीमद्भागवत, कीर्तन और हरिनाम ही मुक्ति

का साधन है। योग की साधना शान्त वातावरण में की जाती है; कीर्त्तन ढोला-मंजीरा, उछलकूद के नाट्य के साथ होता है। इसे कलियुगी धर्म माना गया है, फिर न जाने हमारे हिन्दू भाई इसे शाश्वत सनातन धर्म क्यों कहते हैं ? सतयुग में वेद, कलियुग में श्रीमद्भागवत, और २०वीं सदी में तो तुलसीदास गोस्वामी का रामचरित मानस और हनुमान चालीसा धर्म रह गये हैं—इतने पर भी यह सब सनातन धर्म हैं। राम, कृष्ण के नामों के कीर्त्तन के साथ-स्वामी शिवानन्द जी अथवा चिन्मयानन्द जी का कीर्त्तन भी प्रचलित हुआ, फिर साईं बाबा, सन्तोषी माता और न जाने कितनों का कीर्त्तन आरम्भ हो गया। बालयोगेश्वर जी ने तो घोषित कर ही दिया था, कि राम, कृष्ण, मुहम्मद और ईसा अपने-अपने युगों में पैगम्बर या अवतार थे। ये सब पुराने हो गये—आजकल के नवीन युग में मैं ही साक्षात् भगवान्, अवतार या पैगम्बर हूँ, संसार की नयी परिस्थितियों में मेरे ऐसे नवीन बाल योगेश्वर ही नेतृत्व कर सकते हैं।

यदि इसका ही नाम सनातन धर्म है, तो नूतन, अति नूतन धर्म भला क्या होगा !! नूतन और नवीनतम का अर्थ विकसित धर्म नहीं, पतित और विकृतधर्म है, मानव धर्म का यह विदूषण (Pollution) है। इसी का नाम तो साम्प्रदायिकता है, यह धर्म नहीं, धर्म की आड़ में ढकोसला है। भागवत धर्म कहता है कि सतयुगी ऋषि तो यज्ञ में काटकर डाले गए पशु को अपने मन्त्र-बल और तपोबल से पुनः जिला दिया करता था, और उसे पशु योनि से छुड़ा कर स्वर्ग का भागी बना देता था। इसलिए उस युग में यज्ञ में पशु बलि का विधान था, इसीलिए वेद का धर्म और वेद की बात करना पुराने युग की

वात है, पर अब तो कीर्त्तन और हरि नाम के जप से काम चल जायेगा। अब अकेले प्रणव या ओ३म् के जप के काम न चलेगा। प्रभु का ओ३म् नाम तो सतयुग के लिए था, किन्तु आज के युग में ओ३म् के साथ हरि अवश्य जोड़ो—हरिओम् कहो, और जय राम राम, कृष्ण या हरि का करो, बम-बम महादेव कहो, यह है सनातन धर्म या साम्प्रदायिक धर्म का स्वरूप, इससे बढ़कर अविद्या और क्या हो सकती है। योग दर्शन में अविद्या का स्वरूप बताते समय महर्षि पतञ्जलि कहते हैं कि सत् को असत्, असत् को सत्, शुचि को अशुचि अशुचि को शुचि, नित्य को अनित्य और अनित्य को नित्य, आत्म को अनात्म और अनात्म को आत्म मानना अविद्या है। इसी परिभाषा के आधार पर ईश्वरीय ज्ञान के स्थान पर मनुष्य की कृतियों और ईश्वर के स्थान पर अन्येतर मर्त्यों को और निर्गुण ब्रह्म के स्थान पर शिलाओं और काष्ठों से निर्मित आकृतियों (ऐतिहासिक या काल्पनिक) को स्थानापन्न करना अविद्या है। अविद्या का परिणाम अन्धविश्वास और महती विनष्टि है—इह चेद् वेदीदथ सत्यमस्ति, चेदिहावेदीन् महतीविनष्टिः।

वेद प्रतिपादित मानव धर्म ही धर्म है, अन्य सब सम्प्रदाय हैं। वेद प्रतिपादित मान्यतायें सब देशों और कालों में एक-सी मान्य हैं। महर्षि कणाद ने धर्म की सुन्दर व्याख्या की है—यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस सिद्धिः सः धर्मः, अर्थात् जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों की सिद्धि हो, वही तो धर्म है। इसे ही मैं अंग्रेजी में कहा करता हूँ **Dharma is the one that leads you to a happy toaday and happier tomorrow,** अर्थात् धर्म वह है जिससे आज भी सुख मिले, और हमारा कल आज से अधिक सुखी हो। आज के कल्याण का नाम **अभ्युदय**

या इह-लोक है, आजकल के कल्याण का नाम निःश्रेयस या परलोक है। यह जीवन ही हमारा पहला और अन्तिम जीवन नहीं है। हमारा अस्तित्व शाश्वत है, और जन्म-मृत्यु एवं बन्ध और मुक्ति का चक्र भी हमारा शाश्वत है। हम सबको याद रखना चाहिए कि हमारा प्रभु भी स्वयंभू है। न वह मरने वाला और न हम मरने वाले। प्रभु तो मेरा ऐसा पिता है कि जिसकी उतनी ही आयु है, जितनी मेरी। और तभी तो वह भी पिता है, और साथ ही साथ मेरे पिता, बाबा और पर-बाबा का भी पिता, और मेरे वेटे, पोते और पर-पोते का भी पिता। इस बात में (और बहुत सी अन्य बातों में भी) वह हमारे सांसारिक माता-पिताओं में भिन्न है। न उसने हमें बनाया, न हमने उसे बनाया। हम दोनों में से कोई बना हुआ है। अतः सदा स्मरण रखना चाहिए कि हम सब प्राणी नहीं अनन्त मार्ग के पथिक हैं—कभी बद्ध रूप में और कभी मुक्त रूप, केवल प्रभु ही जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त है। उसका अनन्त विस्तार है (ज्ञान, शक्ति और आनन्द तीनों ही विभाओं में), और हमारी अणु-परिमिति है। इस भेद ने ही हमें उपासक और प्रभु को उपास्य बनाया हुआ है।

अनन्त मार्ग पर चलने वाला अणुजीव सुख से दुःख की ओर, और दुःख से सुख की ओर (दोनों ही दिशाओं में) यात्रा करता रहता है। धर्म वह है जो दुःख से सुख की ओर ले जाये, अज्ञान से ज्ञान की ओर, अन्धकार से ज्योति या प्रकाश की ओर—साधारण अभ्युदय से उन्नततर निःश्रेयस की ओर। धर्म से विकास होता है, अधर्म से पतन या अवतार।

धर्म की एक और परिभाषा महर्षि जैमिनी ने पूर्व मीमांसा दर्शन में दी है—चोदनालक्षणोऽर्थोधर्मः। धर्म वह है जो ईश्व-

रीय ज्ञान द्वारा प्रतिपादित हो, उस ज्ञान के प्रति हमारी प्रेरणा करे। मनुष्य के लिए ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करने के दो स्रोत हैं। एक तो शब्दमय ज्ञान जो मनुष्य को प्रभु प्रेरणा से उस आदिम अवस्था में मिला, जब वह सद्-असद् विवेकवती मेधा या बुद्धि से सम्पन्न हो चुका था। इस ज्ञान का नाम ही श्रुति या वेद है। दूसरा ज्ञान वह है, जिसका प्रस्तार प्रभु ने अपनी सृष्टि में किया हुआ है। प्रभु ने अपने ज्ञान को तो ? रहस्य बनाया है, न छिपा कर रक्खा है। पढ़ने की क्षमता मनुष्य में होनी चाहिए। ज्यों-ज्यों वह प्रयास करेगा, प्रभु की सृष्टि, प्रभु का शाश्वत काव्य उसके ज्ञान को विकसित करने में सहायक होगा, और मनुष्य यदि ज्ञान के उपयोग में विवेक और सद्भावना का प्रयोग करेगा, तो यही ज्ञान के उपयोग में विवेक और सद्भावना का प्रयोग करेगा, तो यही ज्ञान उसे समृद्धि और शान्ति भी देगा, और बन्ध से मुक्ति की ओर अग्रसर करेगा। प्रकृति स्वयं अदृष्ट है, किन्तु प्रभु की कला से चित्रित होने पर दृश्यमान बनती है। प्रकृति स्वयं जड़ है, किन्तु प्रभु की चेतनता से स्पन्दित होकर सचेतन हो जाती है। नूतन और पुरातन सभी ऋषियों ने प्रकृति के रहस्यों के उद्घाटन के बहाने प्रभु की चेतनता का अनुभव किया। इसी का नाम विज्ञान है, शास्त्र है, और इसे ही दर्शन कहते हैं।

प्रभु ने सृष्टि भी बनायी और श्रुति भी, और इसीलिए श्रुति और सृष्टि में, शब्द में और विज्ञान में न विरोध संभव है, न संघर्ष। दोनों का आश्रय शाश्वत सत्य है। सत्य ही धर्म है, सत्य ही विज्ञान। सत्य सदा कल्याणमय है, सत्य में ही सौन्दर्य और सौष्ठव है, सत्य ही शम् है, शान्ति है, शंभु है, स्वस्ति है और भद्र है। इसी का नाम मय है और यही सत्य अन्ततोगत्वा

ज्योति, आनन्द और अमृत बनता है, जिसकी उपलब्धि और अनुभूति जीवन का परम लक्ष्य है।

धर्म प्रतिपादित करने वाले शास्त्रों ने इसी परम सत्य की उपलब्धि के लिए कर्त्तव्याकर्त्तव्यों का वर्गीकरण विभिन्न रूपों में किया है, जिन्हें हम कभी यम कहते हैं। ये वे कर्त्तव्य हैं, जो समष्टि या समाज में रहते हुए व्यक्ति के लिए परमावश्यक हैं, और जिन्हें योग दर्शन में महाव्रत कहा गया है, क्योंकि जाति, देश, काल और समय की अपेक्षा से ये अनवच्छिन्न और सार्व-भौम हैं। कुछ कर्त्तव्य व्यक्ति के निजी हैं, जिन्हें नियम कहा गया है—शौच, सन्तोष, तपस्, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणि-धान। यम भी पाँच हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। मनु महाराज ने धर्म के लक्षणों को दश नामों के द्वारा अभिव्यक्त किया—धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य, और अक्रोध। महर्षि दयानन्द ने इन्हीं को आर्य समाज के नियमों में अपने ढंग से प्रतिपादित कर दिया—(क) सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए, (ख) सब काम धर्मानुसार, अर्थात् सत्य और असत्य से विचार करके करने चाहिए, (ग) सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार यथा योग्य बर्तना चाहिए, (घ) संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना, (ङ) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सब की उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

ये लक्षण किस धर्म के हैं? मनुष्यमात्र के शाश्वत धर्म के धर्म में न कलियुग की बात है, न सतयुग की। सब युगों में और सब देशों में जो एकसमान व्यवहार्य हो वही धर्म है।

व्यक्ति, अवतार, पैगम्बर, तीर्थ, पंडा, पुरोहित, झंडा, मन्दिर, मस्जिद और गिरजे की कल्पनाओं ने सम्प्रदायों को जन्म दिया है, जिनसे धर्म की हानि हुई है। अवतारवाद और पैगम्बरवाद दोनों से ही धर्म की ग्लानि और धर्म की हानि हुई है। राम, कृष्ण, ईसा, और मुहम्मद ये चारों मनुष्य थे, इसीलिए महान् और जीवन के लिए आदर्श रहे हैं,—इन्हें ईश्वर का अवतार अथवा ईश्वर का एकमात्र पुत्र, अथवा ईश्वर का अलौकिक पैगम्बर बनाकर न तो हमने इनके प्रति न्याय किया है, और न ईश्वर के प्रति हमने सच्ची आस्तिकता प्रकट की है। शाश्वत मानव धर्म ही धर्म है, और यही वेद द्वारा प्रतिपादित है। सम्प्रदायवादिता धर्म की विकृति है।

———

श्रुति-वचन

१

भज सेवायाम् (१-७२४, उ० भजति, ते)-(भ्वादि-गण)

(१) भजना, भजन करना; (२) उपभोग करना, विषय वासना का अनुभव करना।

भज विश्राणने (१०।२०१, उ०, भाजयति, ते)-(चुरादि-गण)

(१) देना, दान करना; (२) पकाना, सिद्ध करना; अन्नादि तैयार करना; (३) अलग करना।

विश्राणनं दानम् विवेचनमित्यन्ये। (क्षीरतरंगिणी १०।१७६)

[गण संख्या इस प्रकार है—(१) भ्वादि-गण, (२) अदादि-गण; (३) जुहोत्यादिगण; (४) दिवादि-गण; (५) स्वादि-गण, (६) तुदादिगण; (७) रुधादि-गण; (८) तनादि-गण; (९) क्र्यादि-गण; (१०) चुरादि-गण; (११) कण्ड्वादि-गण]।

२

ईश्वरप्रणिधानाद् वा। (योग० १।२३)

अर्थ—(क) अथवा (ईश्वरप्रणिधानाद्) ईश्वर के प्रणिधान (अगाध प्रेम, श्रद्धा और आत्मसमर्पण) से (समाधि आदि की प्राप्ति)

शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर-प्रणिधानानि नियमाः ।
(योग० २।३५)

अर्थ—पाँच नियम ये हैं—शौच, सन्तोप, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान ।

समाधिसिद्धिरीश्वर-प्रणिधानात् । (योग० २।४५)

अर्थ—ईश्वर-प्राणिधान से समाधि-सिद्धि होती है ।

३

न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु
कामाय पतिः प्रियो भवति ।

अर्थ—पति की कामना के लिए पति प्रिय नहीं होता, अपने आत्मा की कामना के लिए पति प्रिय होता है ।

न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु
कामाय जाया प्रिया भवति ।

अर्थ—पत्नी की कामना के लिए पत्नी प्रिय नहीं होती, अपने आत्मा की कामना के लिए पत्नी प्रिय होती है ।

न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्रः प्रिया भवन्त्यामनस्तु
कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति ।

अर्थ—पुत्रों की कामना के लिए पुत्र प्रिय नहीं होते, अपने आत्मा की कामना के लिए पुत्र प्रिय होते हैं ।

न वा अरे वित्ताय कामाय वित्तं प्रियं भवन्त्यात्मनस्तु
कामाय वित्तं प्रियं भवन्ति ।

अर्थ—वित्त या धन की कामना के लिए वित्त प्रिय नहीं होता, अपने आत्मा की कामना के लिए वित्त प्रिय होता है ।

न वा अरे ब्रह्मण: कामाय ब्रह्म प्रियं भवन्त्यात्मनस्तु
कामाय ब्रह्म प्रियं भवन्ति ।

अर्थ—ब्राह्म-शक्ति, ब्राह्मणत्व की कामना के लिए ब्रह्म प्रिय नहीं होता, अपने आत्मा की कामना के लिए ब्राह्मणत्व प्रिय होता है।

न वा अरे क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं प्रियं भवन्त्यात्मनस्तु
कामाय क्षत्रं प्रियं भवन्ति ।

अर्थ—क्षत्र, अर्थात् क्षात्र धर्म की कामना के लिए क्षत्र प्रिय नहीं होता, अपने आत्मा की कामना के लिए क्षत्र प्रिय होता है।

न वा अरे लोकानां कामाय लोका: प्रिया: भवन्त्यात्मनस्तु
कामाय लोका: प्रिया भवन्ति ।

अर्थ–लोकों की कामना के लिए लोक प्रिय नहीं होते, अपने आत्मा की कामना के लिए लोक प्रिय होते हैं।

न वा अरे देवानां कामाय देवा प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु
कामाय देवा प्रिया भवन्ति ।

अर्थ—देवों की कामना के लिए देव प्रिय नहीं होते, अपने आत्मा की कामना के लिए देव प्रिय होते हैं।

न वा अरे भूतातां कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्त्यात्मनस्तु
कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति ।

अर्थ—भूतों की कामना के लिए भूत प्रिय नहीं होते, अपने आत्मा की कामना के लिए भूत प्रिय होते हैं।

न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवन्त्यात्मनस्तु
कामाय सर्वं प्रियं भवति ।

अर्थ—इस सब कुछ (सर्व) की कामना के लिए सब कुछ प्रिय नहीं होता, अपने आत्मा की कामना के लिए सब कुछ प्रिय होता है।

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्।

अर्थ—हे मैत्रेयी, अरे वह आत्मा ही तो, जीवात्मा और परमात्मा, वस्तुतः दृष्टव्य—देखने योग्य, श्रोतव्य—सुने जाने योग्य, मन्तव्य—विचारे जाने योग्य, और निदिध्यासितव्य—ध्यान किये जाने योग्य है, उसी का विचार कर और उसी का ध्यान कर। आत्मा के ही देखने से, सुनने से, और समझने से और जानने से यह सब जाना-माना और समझ में आ जाता है।

———

ईश्वर प्रणिधान

२४ अगस्त को मेरा प्रवचन आर्य समाज के विशाल हाल में था, पर २५ ता० का वह दूसरा प्रवचन, यज्ञशाला के सामने के खुले मैदान में। लाउड स्पीकर का प्रबन्ध होते हुए भी हॉल में ध्वनि गूँजने के कारण श्रोताओं को सुनने में कठिनाई होती थी। इसीलिए आज बाहर प्रांगण में प्रबन्ध किया गया। पुराने समय के बने व्याख्यान भवनों में ध्वनि के प्रसारण की सुविधा का ध्यान बहुत कम ही रक्खा जाता था। सभी आर्य समाजों से मेरा आग्रह है कि जब कभी भी व्याख्यान कक्षों का निर्माण करें, ध्वनि का विशेष ध्यान रक्खा करें। लाउड स्पीकर के भोंपू कहाँ-कहाँ लगाये जाने चाहिए इसकी आयोजना साव-धानी से पहले से ही कर लें। पुराने समय की बात गई कि जब व्याख्याता गले फाड़-फाड़कर व्याख्यान देता था, और हजारों की भीड़ मन्त्र-मुग्ध होकर व्याख्यान सुनती थी। अब तो कमरे में बैठी हुई २०-२५ व्यक्तियों की उपस्थिति में भी लाउडस्पीकर की सहायता लेनी पड़ती है।

आज के मेरे प्रवचन का विषय ईश्वर-प्रणिधान था, जिसे साधारणतया लोग ईश्वर-भक्ति भी कहते हैं। आजकल की भारतीय भाषाओं में ईश्वरभक्ति शब्द रूढ़ि अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है, पर यह पौराणिक कालीन प्रयोग है, जिसका सम्बन्ध

अवतारवाद से है। नैरोबी स्त्री आर्य समाज के एक भाषण में भी मैंने भोजन के सम्बन्ध में ऐसी ही बात कही थी। भज् शब्द के दो प्रयोग पाणिनि के धातुपाठ में हैं—(१) भज सेवायाम् (भ्वादिगण) (१।७२४) और (२) भज विश्राणने (चुरादिगण) (१०।२०१), अर्थात् सेवा करने के अर्थ में अथवा भाग देने, बाँटने, वितरण करने के अर्थ में इस धातु का प्रयोग होता है। भजन (भाग देने), विभाजन, विभक्ति भागफल भजनफल आदि शब्दों में भज विश्राणने अभिप्राय का प्रयोग है। वेद और वैदिक साहित्य में भज शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। गाने के अर्थ में भजन शब्द का प्रयोग, और इसी प्रकार आर्य समाज में भजनीक, भजनोपदेशक आदि शब्द अवैदिक प्रयोग के हैं। योग का अर्थ जोड़ना है, भक्ति का अर्थ है, विभक्त या अलग करना (चुरादि-गण)। आज हमारे साहित्य में भक्ति का अर्थ प्रभु से प्रीति लगाना हो गया है. और प्रीति होने पर जो गाने गाये जाते हैं. उनको हमने गलती से नाम भजन दे रक्खा है। ब्द का यह रूढ़ि क्लिष्ट प्रयोग है।

भक्ति शब्द भज-सेवायाम् से भी बनता है, जिसका सम्बन्ध सेवा करने स है। सेवा करना क्या है—नहलाना, सुलाना, कपड़े पहिनाना, सोने के अनन्तर जगाना, पत्र-पुष्प भेंट करना, थका हो तो पैर दबाना, बीमार पड़ें तो चिकित्सा करना, आदि। ईश्वर अवतार लेने पर बालक बनता है, बड़ा होता है, मनुष्य के समान उसके साधारण कार्य होते हैं, तब उसे सेवा की आवश्यकता होगी ही। इसी संन्दर्भ में भारतीय पौराणिकों और अवतारवादियों ने भक्ति प्रथा को जन्म दिया। आगे चल करके भक्ति के कई भाग या प्रकार भी बन गए—शान्ति,

दास्य, सख्य, वात्सल्य, और माधुर्य । भागवत युग में यह पूरा एक शास्त्र बन गया ।

योग दर्शन में ईश्वर प्रणिधान शब्द लगभग ईश्वर के प्रति असीम अनुराग, अनन्य प्रेम और आत्म-समर्पण के अर्थ में आता है । योग की सिद्धि का प्रारम्भ क्रिया-योग से होता है— तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान इस क्रिया-योग के मुख्य अंग हैं, और इनमें प्रधानता ईश्वर-प्रणिधान की है । ईश्वर-प्रणिधान अर्थ का व्यास-भाष्य में समस्त क्रियाओं का परमेश्वर में परम-गुरु अर्पण, और कर्म-फल-संन्यास (फल-अस्पृहा,) या फल त्याग) है—

ईश्वर-प्रणिधानं सर्व-क्रियाणां
परमगुरवार्पणं तत्फलसंन्यासोवा ।

(योग सूत्र २।१ पर व्यास भाष्य)

योग दर्शनं में यम-नियमों का उल्लेख है । नियमों में प्रधानता ईश्वर प्रणिधान की है – शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये पाँच नियम हैं (योग २।३२) । ईश्वर-प्रणिधान से समाधि सिद्धि होती है (२।४५); ईश्वर-प्रणिधान का अभिप्राय ईश्वर के प्रति अपने समस्त भावों को अर्पित कर देना है । ईश्वर के सात्विक रस में अपने को तल्लीन कर देना ही ईश्वर-प्रणिधान है । प्रभु-भक्ति से अधिक महत्त्व का शब्द ईश्वर-प्रणिधान है । जिसने अपने को ईश्वर के समर्पित कर दिया है, उसके लिए न कुछ मोह रह जाता है, न कुछ शोक । यश-अपयश, हानि-लाभि, जीवन-मरण सब उसके लिए तुच्छ है ।

ऐसे ईश्वर के प्यारे के लिए ईश्वर ही द्रष्टव्य, श्रोतव्य, मन्तव्य, और निदिध्यासितव्य है, पर ईश्वर को हम न इन आँखों

से देख सकते हैं, न इन कानों से सुन सकते हैं, न मन की उस तक पहुँच है। वह परम चैतन्य है. हम अणु-चैतन्य हैं। हमें उसे अपनी चिद्शक्ति से देखना और पहचानना है। उसकी प्रतीति हमें इन्द्रियों से नहीं करनी हैं। इन्द्रियों से तो हमें दृश्यमान जगत् दीखता है। इस जगत् में ईश्वर की कृति और कला सर्वत्र व्याप्त है। प्रभु की यह कला इन्द्रियों से देखो, कितनी चमत्कारपूर्ण है। फूल के सौन्दर्य को भी देखो, और इस सौन्दर्य को दिखाने वाली आँख की भी क्षमता को देखो—आँख कैसे देखती है इसका अनुमान करोगे, तो जिस कलाकार ने आँख बनायी है, उसके प्रति तुम्हारा अनुराग उत्पन्न होगा। सृष्टि को देखकर सृष्टिकर्त्ता के प्रति प्यार पैदा करो। बिना प्यार पैदा किये, तुम प्रभु के प्रति आत्म-समर्पण नहीं कर सकते। ईश्वर को प्यार करने का अर्थ यह नहीं है, कि ईश्वर कोई बच्चा है, जिसे तुम गोदी में खिलाओ, या उसकी तोतली बोली को सुनकर प्रसन्न हो। पर दुनिया के बच्चों को देखो, और यह अनुभव करने की चेष्टा करो कि प्रभु की कृपा से किस चमत्कारपूर्ण रूप से गर्भ और गर्भ के बाहर हमारे शरीर का विकास होता है। हमारे शरीर के अंग-अंग में प्रभु की कला है। राम का रावण को मारना, कृष्ण का कंस को मारना —यह तो प्रतिदिन की मानवीय बाते हैं, जो मनुष्य की कमजोरी (अल्प शक्तित्व) की परिचायक है। यह तो प्रभु का दिव्य विधान है कि हमारे जन्म के बीज में हमारा अन्त समाहित है, यह प्रभु की सर्वशक्तिमत्ता है। समस्त अवतारी व्यक्तियों को किसी भयंकर प्राणी को मारने का श्रेय तो दिया जाता है, पर कोई भी अवतारी व्यक्ति एक छोटा-सा नाखून, या आँख की पुतली भी तो न बना सका—राम रहा हो या

ईसा-मुहम्मद। इनमें से किसने एक तिनका भी बनाया !! प्रभु को पहचानना चाहते हो, तो उसकी कृति से प्यार करना सीखो। इस विराट सृष्टि में उसके विराट स्वरूप को देखो, और सूक्ष्म जगत् में उसकी अतीव सूक्ष्म कला देखकर आनन्द लो। सृष्टि की ओर अपने शरीर की उपेक्षा करके तुम ईश्वर के प्यारे नहीं बन सकते। सृष्टि भी सत्य है और हमारा शरीर भी सत्य, क्योंकि इसमें प्रभु की शाश्वत कला प्रस्फुटित है। शरीर का मिटना और सृष्टि की प्रलय भी प्रभु की शाश्वत प्रयोजन-पूर्ण सुन्दर और कल्याणमय कला का अनिवार्य और परमावश्यक अंग हैं। हमारे समस्त बन्धन ही प्रयोजनपूर्ण हैं, और आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि इन बन्धनों के मार्ग से ही हम मुक्ति की उपलब्धि कर सकते हैं— आत्महत्या इसी दृष्टि से महान् पाप है। सप्रयोजन होने के कारण ही हमारा शरीर, हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ, और समस्त सृष्टि प्रतिक्षण परिवर्त्तनशील होने पर भी सत्य है, मिथ्या नहीं। वैदिक दर्शन इस दृष्टि से यथार्थ दर्शन है।

प्रभु का प्यार अन्य सांसारिक प्यारों से भिन्न है। प्रभु के प्यार के लिए हमारे पास कोई उपयोगी शब्द नही हैं। प्रभु हमारी माता भी है, पिता भी है, पति भी है, बन्धु और सखा भी है। प्रभु हमारे साथ वात्सल्य स्नेह भी रखता है, पर याद रखिये कि हम सबकी आयु बराबर है। वह भी स्वयंभू है, हम भी स्वयंभू हैं। न वह पैदा होता और, न हम पैदा होते हैं। इस दृष्टि से जब हम उसे माता, पिता, पति या बन्धु कहते हैं, तो हमारा अभिप्राय ही दूसरा होता है, वह हमारा पिता है पर सांसारिक या जीव-वैज्ञानिक अर्थ में नहीं—उसके न लिंग है, न योनि, न हम उसके गर्भ में उस प्रकार रहते हैं, जैसे माता के। जब हम उसे

माता कहते हैं, तो यह मत समझियेगा, कि उसका स्त्री का सा चित्र है। सरस्वती, श्री इला, भारती भी उसके नाम हैं। ये शब्द साहित्य में स्त्रीलिंग हैं। पर प्रभु हमारी माता है, इसलिए नारी का सा चित्र बनाना, या नारी मूर्ति बनाना नासमझी और नितान्त मूर्खता है। उस प्रभु का चित्र शेरनी का सा नहीं यद्यपि वह शेर और शेरनी दोनों की माता है। उसका चित्र मोरनी का सा नहीं, यद्यपि वह मोर और मोरनी दोनों की माता है। वह इसी प्रकार न गदही है, न बकरी, न हथिनी यद्यपि है वह सबकी माता। सरस्वती की मूर्ति नारी ऐसी बनाकर, दो के स्थान में कई हाथ बनाकर, प्रस्तुत करना बड़ी भोंड़ी और परिहासपूर्ण कला ही तो होगी। नारी की आकृति बनाना मूर्खता है, फिर नारी के से वस्त्र और अलंकार पहनाना यह सब नाटक के स्वरूप ही तो हैं। काव्य और कला की दृष्टि से ऐसा करना हमें आता तो अवश्य है पर कला को कला की सीमा तक ही सीमित रखना चाहिए। उसके साथ आगे नाटक का सा खेल रचना मूर्खता होगी। उपमा एकांगी होती है, रूपक अलंकर में दो चार साधर्म्य निभाये जाते हैं, पर आगे चलकर मूर्ति को भोग लगाना, उसे सुलाना, जगाना, उसका विवाह कराना, फिर उससे सन्तानोत्पत्ति करा देना, और फिर कथानक का पौराणिक साहित्य तैयार कर देना काव्य और कला के भी विपरीत है, और ईश्वर-प्रणिधान या प्रभु-भक्ति को कलंकित करना है। काव्य और कला का उद्देश्य दार्शनिक तथ्य को सुगम और सरस बनाना है, तथ्य की विकृति करके असत्य तक पहुँचा देना काव्य के उद्देश्य के विपरीत है। कला को अन्धविश्वास की जननी नहीं बनना चाहिए। कला द्वारा सत्य की ही अभिव्यक्ति होनी चाहिए।

वेद भी काव्य है, और कलापूर्ण है, पर वे सत्य की अभिव्यक्ति करते हैं। पौराणिक साहित्य अन्धविश्वास और जघन्य असत्य का प्रेरक होता है। यही आर्ष और अनार्ष का भेद है, ईश्वर-प्रणिधान में और आजकल के भक्ति-वाद में यही अन्तर है।

प्रभु का प्यार नैसर्गिक है, जैसे बालक का माता-पिता के प्रति प्रेम। कभी-कभी हमारी शिक्षा-दीक्षा ही हमारे ईश्वर-प्रेम में बाधक होती है। कभी-कभी आस्तिकता सम्बन्धी गलत मान्यतायें हमें नास्तिक बना देती हैं। मैंने जीवन भर विज्ञान पढ़ा-पढ़ाया; विज्ञान ने मेरी आस्तिकता का पोषण किया। विज्ञान का प्रतिपादन सत्य के निमित्त था, और आस्तिकता भी सत्य की समर्थक है। इसलिए विज्ञान और आस्तिकता में कभी विरोध उत्पन्न नहीं होना चाहिए। पर यदि मेरी आस्तिकता द्रोपदी के चीर बढ़ जाने, गोवर्धन पर्वत के अंगुली पर उठा लेने, या पत्थर की अहिल्या को पाद-स्पर्श से जीवित कर देने या चाँद के दो टूकड़े कर देने, या अन्धों की आँख पर अँगुली फेर कर आँखें खोल देने—ऐसे असत्यों पर निर्भर होती, तो अवश्य ही विज्ञान पढ़ने से मैं नास्तिक हो जाता। ईश्वर का प्रणिधानी या भक्त अपनी सीमाओं और निर्बलताओं को समझता है। नित्य नये अनुसन्धानों के बाद भी वह अपनी उपलब्धियों को अति तुच्छ मानता है। वह अपने ज्ञान-क्षेत्र को निरन्तर विस्तृत करता आ रहा है। ईश्वर प्रदत्त वैदिक ज्ञान तत्त्व-ज्ञान के क्षेत्र को विस्तृत करने के निमित्त है, सीमित करने के लिए नहीं। इसीलिए वेदों के तथ्यों को समझने के लिए हमने उपवेद, वेदांग और उपांगों के रूप में शास्त्रों को विकसित किया। पुराने शास्त्रों को शास्त्र का अन्तिम रूप मानना नास्तिकता है। पुराने शास्त्रों की आस्तिक परम्परा में

ही आज भी वैज्ञानिक उपलब्धि का प्रसार हो रहा है। इसी का एक नाम ब्रह्म-यज्ञ है अर्थात् ज्ञान-यज्ञ या ज्ञान योग।

जिसने अहिंसा और सत्य को नहीं अपनाया वह ईश्वर का प्यारा नहीं हो सकता। अहिंसा ही रस माधुरी है—सर्वजन-हिताय, सर्वलोकहिताय के मूल में अहिंसा है। इसी का परिणाम वैर-त्याग है। जो वैर और द्वेष करता है, वह वैज्ञानिक भी नहीं हो सकता, न आस्तिक, न योगी, और न भद्र पुरुष। जिसने अहिंसा का व्रत नहीं लिया, वह सत्यप्रिय भी नहीं हो सकता। अन्धविश्वास फैलाने वाला व्यक्ति न योगी हो सकता है, न अवतारी, न ईश्वर का भक्त। वह तो छली, छद्मी, कपटी और स्वार्थी है, निरीह जनता को मूर्ख बनाने का उसने षडयन्त्र रच रक्खा है। ईश्वर प्रणिधानी व्यक्ति सत्य के प्रति सतर्क रहता है, क्योंकि प्रभु सत्यस्वरूप है। सत्य की उपलब्धि एक सरित-प्रवाह है जो अनुभूति और अनुसन्धान के दो कूलों के बीच में निरन्तर आगे बहता रहता है। ईश्वर प्रणिधानी कर्म-फल को प्रभु को समर्पित करता रहता है, किन्तु कर्म का परित्याग करके आलसी नहीं बैठता। संन्यासी और त्यागी होते हुए भी वह अति-क्रियावान् है। मोम्बासा के बन्धुओं को मेरा आशीर्वाद। वे ईश्वर-प्रणिधानी बनें और कर्म-योगी।

श्रुति-वचन

१

एवं व अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरसः ।

(शतपथ ब्राह्मण, १४।५।४।१०)

अर्थ—(याज्ञवल्क्य अपनी पण्डिता पत्नी मैत्रेयी से कहते हैं कि) जो आकाशादि से भी बड़ा सर्व व्यापक परमेश्वर है, उससे ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद, ये चारों वेद उत्पन्न हुए हैं। जैसे मनुष्य के शरीर से श्वास बाहर आता-भीतर जाता है, उसी प्रकार परमात्मा से सृष्टि के आरम्भ में वेदों का प्रादुर्भाव हुआ, और प्रलय के समय वह वेद उसी में तिरोहित हो जाते हैं।

२

परमकारुणिको हि परमेश्वरोऽस्ति पितृवत् । यथा पिता स्वसन्तति प्रति सदैव करुणां दधाति, तथेऽश्वरोऽपि परमकृपया सर्वमनुष्यार्थं वेदोपदेशमुपचक्रे ।

(दयानन्द, ऋग्वेदादि भा० भू०-वेदोत्पत्ति विषयः)

अर्थ—पिता के तुल्य परमात्मा भी परम-दयालु है। जैसे पिता अपनी सन्तान के प्रति कृपालु होता है, उसी तरह ईश्वर ने भी परम कृपा करके सब मनुष्यों के हित के लिए वेदोपदेश किया।

३

यथा कृपययमाणेनेश्वरेण प्रजासुखार्थं कन्दमूलफलतृणादिकं रचितं स कथं न सर्वसुखप्रकाशिकां सर्वविद्यामयीं वेदविद्यामुपदिशेत् ? किञ्च ब्रह्माण्डस्थोत्कृष्टसर्वपदार्थप्राप्त्या यावत् सुखं भवति न तत् विद्याप्राप्तसुखस्य सहस्रतमेनांशेनापि तुल्यं भवत्यतो वेदोपदेश ईश्वरेण कृत एवस्तीति निश्चयः।

(दयानन्द, ऋग्वेदादि, भा० भू० वेदोत्पत्ति विषयः)

अर्थ—जैसे कृपालु ईश्वर ने प्रजा के सुख के लिए कन्द-मूल फल तृणादि रचे, तो क्या वही प्रभु मनुष्य के लिए सर्व सुखों को देने वाली सब विद्याओं का बीज रूप आधार वेद विद्या का उपदेश क्यों न करता। इस ब्रह्माण्ड में स्थित इन उत्कृष्ट पदार्थों की प्राप्ति से मनुष्य को जो सुख मिलता है, वह ईश्वर द्वारा वेदोपदेश के सुख का हजारवाँ भाग भी तो नहीं है। अतः वेद ज्ञान ईश्वर-प्रदत्त ही है।

४

सत्य को स्वीकार करने के लिए और असत्य को त्यागने के लिए सदा उद्यत रहना चाहिए। प्रत्येक शुभ कर्म करने के पूर्व सत्य के ग्रहण करने का व्रत लेना चाहिए।

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे
राध्यताम्। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ (यजु० १।५)

अग्ने। व्रतपते। व्रतम्। चरिष्यामि। तत्। शकेयम्। तत्। मे। राध्यताम्। इदम्। अहम्। अनृतात्। सत्यम्। उपैमि।

अर्थ—(व्रतपते, अग्ने) हे व्रतों के पालक, अग्ने परमात्मन्! मैं (व्रतं चरिष्यामि) व्रत का आचरण करूँगा। (तत् शकेयं) उसे

पालन करने की शक्ति मुझमें हो। (तत् मे राध्यताम्) उसे मैं पूरा कर सकूँ। (इदं) यह (अहं) मैं (अनृतात्) झूठ या अनृत को छोड़ कर (सत्यं) सत्य को (उपैमि) प्राप्त होता हूँ।

सत्य को धारण करने का अर्थ श्रद्धा है। श्रद्धा केवल सत्य में होती है (श्रत्=सत्य; धा=धारण करना)। शाश्वत सत्य का नाम ऋत है, जो ज्ञान-विज्ञान का आधार है (सत्यं च मे श्रद्धा च मे—यजु०१८।५)

५

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः॥

(यजु० १९।७७)

दृष्ट्वा। रूपे। वि। आ। अकरोत्। सत्य-अनृते। प्रजापतिः। अश्रद्धाम्। अनृते। अदधात्। श्रद्धाम्। सत्ये। प्रजापतिः॥

अर्थ—(प्रजापतिः) प्रजापति ने (सत्यानृते) सच-झूठ में (रूपे) दोनों के वास्तविक रूप को (दृष्ट्वा) देखकर (वि, आ, अकरोत्) ठीक-ठीक विचार कर अलग-अलग कर दिया। (अनृते) झूठ में (अश्रद्धां) अश्रद्धा को (अदधात्) स्थापित किया, और (प्रजापतिः) प्रजापति ने (सत्य) सत्य में (श्रद्धां) श्रद्धा उत्पन्न की।

६

तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः। (शतपथ ब्राह्मण ११।५।२।३)

अर्थ—(तेभ्यः) उस (तप्तेभ्यः) तेजोमय प्रभु से (वेदाः अजायन्तः) सभी वेद उत्पन्न हुए—(अग्नेः) अग्नि ऋषि द्वारा

(ऋग्वेदः) ऋग्वेद, (वायोः यजुर्वेदः) वायु ऋषि के माध्यम से यजुर्वेद (सूर्यात् सामवेदः) आदित्य ऋषि के माध्यम से सामवेद (और इसी प्रकार अंगिरा के माध्यम से अथर्ववेद)।

७

अग्नि-वायु-रविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञ-सिद्धयर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्॥
(मनुस्मृति १।२३)

अर्थ—अग्नि, वायु, आदित्य, ये तीन सनातन ब्रह्मर्षि हैं जिन्होंने यज्ञ की सिद्धि के लिए ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का दोहन किया।

८

(क) विद ज्ञाने, विद सत्तायाम्, विदलृ लाभे, विद विचारणे एतेभ्यो हलश्च (पाणिनि ३।३।१२१) इति सूत्रेण कारणाधिकरणकारकयोर्घञ् प्रत्यये कृते वेद शब्दः साध्यते।

अर्थ—वेद शब्द विद् धातु से निकला है। इस धातु के चार अर्थ होते हैं, ज्ञान के लिए, सत्ता के लिए, लाभ के लिए और विचारने के लिए।

(ख) तथा श्रु श्रवणे, इत्यस्माद् धातोः करण कारके 'क्तिन्' प्रत्यये कृते श्रुतिशब्दो व्युत्पद्यते।

अर्थ—वेद का दूसरा नाम श्रुति भी है, जो श्रु धातु से बनता है, जिसका अर्थ सुनना है, इस धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय लगाकर श्रुति शब्द सिद्ध करते हैं। समस्त मानव सृष्टि के प्रारम्भ से हम वेद की ऋचायें सुनते-सुनाते आये हैं, और कण्ठाग्र करके इन्हें हमने आज तक सुरक्षित रक्खा है, अतः वेद को श्रुति भी कहते हैं।

९

नित्यस्तु स्याद् दर्शनस्य परार्थत्वात्

(पूर्व मीमांसा १।१।१८)

अर्थ—जैसे शब्द नित्य है, नाशरहित है, और अर्थ के जानने के निमित्त है, उसी प्रकार वेद भी नित्य हैं।

१०

तद् वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्। (वैशेषिक १।१।३)

अर्थ—(तद् वचनात्), वेद ईश्वर के वचन हैं, ऐसा होने से (आम्नायस्य) चारों वेदों का (प्रामाण्य) प्रामाण्य है, अर्थात् वेद सर्व-मान्य हैं।

११

मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्।

(न्याय० २।१।६७)

अर्थ—मन्त्रायुर्वेद के प्रामाण्य के समान वेदों का भी निश्चयपूर्वक सर्व प्रामाण्य है।

[अर्थात् जैसे आयुर्वेद आदि समस्त विज्ञान-विषय देश-काल-अवस्था में एक से प्रमाणस्वरूप हैं, उसी प्रकार वेद का प्रमाणत्व है; विज्ञान या साइंस की बातें भूत-भविष्यत्-वर्तमान तीनों कालों के और सभी देशों के लिए सच्ची हैं, इसी प्रकार वेद-वचन भी मनुष्य मात्र के लिए सभी देशों और तीनों कालों में प्रामाणिक हैं।]

१२

पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।

(योगदर्शन १।२६)

अर्थ—पहले हुए सभी ऋषियों का (अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा, ब्रह्मा आदि सृष्टि के अति प्राचीन ऋषियों का) भी आदि गुरु परमात्मा है, आज भी वही गुरु है, और आगे भी सदा वही गुरु रहेगा, (भूत, वर्तमान और भविष्यत्) तीनों कालों में वही गुरु है,

१३

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाणत्वम ।

(सांख्य ५।५१)

अर्थ—परमेश्वर की जो निजी स्वाभाविक शक्ति है, उससे प्रगट होने के कारण वेदों का नित्यत्व और स्वतः प्रामाणत्व स्वीकार करना चाहिये ।

१४

वेद का विस्तार

चारो वेदों में मन्त्रों की संख्या निम्न प्रकार है :—

वेद	विभाजन	मन्त्रों की संख्या
ऋग्वेद	(१) मण्डल-सूक्त	दशो मण्डलों में १०,५८९ मन्त्र
	(२) अष्टक, अध्याय, वर्ग	आठों अष्टकों में २०२४ वर्ग और प्रत्येक अष्टक में ८-८ अध्याय (मन्त्र संख्या १०,५८९)
यजुर्वेद	४० अध्याय	पूर्व-विंशति (पूर्वार्द्ध के २० अध्यायों) में १२११ कण्डिकायें और उत्तर-विंशति (उत्तरार्ध के २० अध्यायों) में ७६५ कण्डिकायें, इस प्रकार सम्पूर्ण कण्डिकाओं की संख्या १२११+७६५ =१९७६ है ।

वेद	विभाजन	मन्त्रों की संख्या
		पूर्व-विंशति में मन्त्रों की संख्या २५८५ और उत्तर-विंशति में १४०३ है, इस प्रकार समस्त यजुर्वेद में मन्त्रों की संख्या २५८५+१४०३=३९८८ है।
सामवेद	पूर्वार्चिक, अरण्यक काण्ड और महा-नाम्न्यार्चिक और उत्तरार्चिक	चारों में मन्त्रों की संख्यायें ५८५, ५५, १० और १२२५=१८७५ हैं। (मन्त्र संख्या १-५८५ ५८६-६४०, ६४१-६५०, और ६५१-१८७५)
अथर्ववेद	२० काण्ड, और उनमें सूक्त (काण्ड, अनुवाक्, और सूक्त में भी विभाजन है)	प्रथम १८ काण्डों में ९५ अनुवाक् हैं। प्रथम १८ काण्डों में ५१६ सूक्त और ४४३२ मन्त्र हैं। १९वें काण्ड में ७२ सूक्त और ४५६ मंत्र हैं। २०वें काण्ड में २१५ सूक्त और १४११ मंत्र हैं। पूरे अथर्ववेद में ७३१ सूक्त और ५:७७ मंत्र हैं।
	चारों वेदों में मंत्र संख्या	१०५८९ (ऋग्०)
		१९७६ (यजु०)
		१८७५ (साम०)
		५९७७ (अथर्व०)
		२०,४१७

१५

वेद के सन्देश

(१) प्रभु से व्याप्त यह सकल जगत् है, यह सृष्टि परिवर्त्तनशील और उसकी रचना (सृष्टि का और सृष्टि के भीतर प्राणियों के जन्म) का विशेष प्रयोजन है।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ॥

[इस परिवर्त्तनशील जगत् में जो कुछ भी है वह सब ईश्वर से व्याप्त है। विरक्त भाव से इसका भोग करो, व्यर्थ इच्छा मत करो। भला यह धन किसका है? न तुम्हारा, न हमारा सब प्रभु का है।]

(२) यह जीवन कार्य करने के निमित्त है, आलसी बनकर मत बैठो—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि, नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

कुर्वन्। एव। इह। कर्माणि। जिजीविषेत्। शतम्। समाः। एवम्। त्वयि। न। अन्यथा। इतः। अस्ति। न। कर्म। लिप्यते। नरे ॥

अर्थ—(कर्माणि) कर्मों को (कुर्वन्) करते हुए (एव) ही, (इह) इस जीवन में, इस संसार में (शतं) सौ (समाः) वर्ष (जिजीविषेत्) जीने की इच्छा करे; (एवं) इस प्रकार ही (त्वयि) तुझमें (न) नहीं, (अन्यथा) इससे भिन्न, अन्य प्रकार से (इतः) इससे (अस्ति) है (न) नहीं (नरे) नर में, मनुष्य में, (कर्म) कार्य (लिप्यते) लिप्त होता। (जो व्यक्ति निरन्तर निष्काम कर्म

करता है, वह कर्म के बन्धन में लिप्त नहीं होता। उसके कर्म उसकी आसक्ति के कारण नहीं बनते।)

व्यक्तिगत कल्याण और समाज के कल्याण के लिए निम्न नैतिक गुण आवश्यक हैं, मानो पृथिवी का आधार ये ही नैतिक गुण हैं।

> सत्यं बृहद् ऋतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः
> पृथिवीं धारयन्ति, सा नो भूतस्य भव्यस्य
> पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥
>
> (अथर्व० १२।१।१)

सत्यम्। बृहद्। ऋतम्। उग्रम्। दीक्षा। तपः। ब्रह्म। यज्ञः। पृथिवीम्। धारयन्ति। सा। नः। भूतस्य। भव्यस्य। पत्नी। उरुम्। लोकम्। पृथिवी। नः। कृणोतु॥

अर्थ—(सत्यं) सत्य (बृहत्) बृहत्, (ऋतं) ऋत, (उग्रं) प्रचण्ड सक्रियता, तेज (दीक्षा) दीक्षा, (तपः) तप, (ब्रह्म) ज्ञान, और (यज्ञ) यज्ञ—ये नैतिक गुण (पृथिवीं) पृथिवी को धारण किए हुए हैं। हमारे (भूतस्य) भूत और (भव्यस्य) भविष्य की (पत्नी) पालन करने वाली (सा पृथिवी) वह पृथिवी (नः) हमारे लिए (लोकं) लोक को अर्थात् इस जीवन को (उरुं कृणोतु) प्रशस्त करे।

वैदिक आदर्श सम्पन्नता का आदर्श है, न कि दारिद्र्य का, पर यह सम्पन्नता भोग के लिए न हो, यह व्यक्ति और समाज के लिए हो।

> प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव।
> यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽ अस्तु वयं स्याम पतयो
> रयीणाम् ॥ (यजु० २३।६५)

प्रजापते । न । त्वत् । एतानि । अन्यः । विश्वा । रूपाणि । परि । ता । बभूव । यत् । कामाः । ते । जुहुमः । तत् । नः । अस्तु । वयम् । स्याम । पतयः । रयीणाम् ॥

अर्थ—(प्रजापते) हे प्रजाओं के पालक परमात्मन् ! (त्वत्) आपसे (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई (ता) इन (विश्वा, जातानि) सब उत्पन्न हुए जड़-चेतनादि पदार्थों का (न) नहीं (परि, बभूव) अधिपति या स्वामी नहीं है; अर्थात् आप ही सर्वोपरि हैं । (यत् कामाः) जिस जिसकी कामना या अभिलाषा करते हुए हम लोग (ते) आपका (जुहुमः) आश्रय लें और आकांक्षा करें, (तत्) वह सब (नः) हमारी होवे । (वयं) हम लोग (रयीणां), धन-सम्पत्ति और वैभव के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ।

हमारा राष्ट्र सब प्रकार से सम्पन्न और वैभवशाली और राष्ट्र के व्यक्ति ज्ञानी, बलवान् सम्पन्न, धनी, पशुओं से सम्पन्न धन-धान्य से पूरित हों । किसी बात की कमी हमारे राष्ट्र में न हो । वैदिक राष्ट्रीय वन्दना निम्न है :—

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् ।
आ राष्ट्रे राजन्यः शूरऽ इषव्योऽतिव्याधी
महारथो जायताम् । दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः
सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो
युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् ।
निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो
नऽ ओषधयः पच्यन्ताम् ।
योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

(यजु० २२।२२)

आ । ब्रह्मन् । ब्राह्मणः । ब्रह्मवर्चसी । जायताम् । आ । राष्ट्रे । राजन्यः । शूरः । इषव्यः । अति-व्याधी । महारथः । जायताम् । दोग्ध्री । धेनुः । वोढा । अनड्वान् । आशुः । सप्तिः । पुरन्धिः । योषा । जिष्णूः । रथेष्टाः, रथे-स्थाः । सभेयः । युवा । आ । अस्य । यजमानस्य । वीरः । जायताम् । निकामे-निकामे । नः । पर्जन्यः । वर्षतु । फलवत्यः । नः । ओषधयः । पच्यन्ताम् । योग-क्षेमः । नः । कल्पताम् ॥

अर्थ—(ब्रह्मन्) हे ब्रह्मन्, महान् परमेश्वर । ब्रह्मवर्चसी (ब्राह्मणः) समस्त विद्याओं से युक्त अर्थात् ब्रह्मवर्चस ब्राह्मण (आ जायतां) उत्पन्न होवें, (राष्ट्रे) हमारे राष्ट्र में (शूरः राजन्यः) वीर क्षत्रिय, राज्य-पुत्र (आ, जायतां) उत्पन्न हों (इषव्यः, अतिव्याधी महारथः) धनुर्विद्या से सम्पन्न, शत्रुओं को पीड़ित करने वाले महान् रथी, युद्ध-कालवेत्ता, (जायताम्) उत्पन्न हों। (दोग्ध्री धेनुः) दूध देने वाली गायें, (वोढा अनड्वान्) ढोझा ढोनेवाले बड़े बलवान्, बैल, (आशुः, सप्तिः) शीघ्र चलने वाले घोड़े, (पुरन्धिः) अनेक कला-कौशलों से सम्पन्न, व्यवहार कुशल. (योषा) स्त्रियां, (रथेष्ठाः) रथों पर स्थिर रहने वाले, (जिष्णुः) शत्रुओं पर विजय करने की आकांक्षा रखने वाले (सभेयः) सभासद (युवा) यौवन सम्पन्न पुरुष (आ, जायतां) उत्पन्न होवें। (अस्य यजमानस्य) इस यजमान की, अर्थात् राज्य के अधिपति राजा की (वीरः) वीर सन्तानें उत्पन्न हों, देश में (निकामे-निकामे) समयानुसार यथेच्छ (पर्जन्यः) मेघ या बादल (वर्षतु) बरसें, (ओषधयः) ओषधियां (फलवत्यः) फलों वाली (नः) हमारे लिए (पच्यन्तां) पकें, फूलें-फलें । (नः) हमारा (योगक्षेमः) योग-क्षेम, प्राप्त करने का प्रयत्न (योग),

और प्राप्त ऐश्वर्य की रक्षा की सामर्थ्य (क्षेम) कल्पताम्) सब प्रकार देश के लिए हितकारी हो।

परिवार में सौमनस्य होना चाहिए—न तो भाई-भाई में द्वेष हो, न छोटे-बड़ों में ईर्ष्या और दुराग्रह। वेद की ऋचा है :—

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ॥

(अथर्व ३।३०।२)

अनुव्रतः। पितुः। पुत्रः। मात्रा। भवतु। संमनाः। जाया। पत्ये। मधुमतीं। वाचम्। वदतु। शान्तिवाम् ॥

अर्थ—(पुत्रः) बेटा (पितुः अनुव्रतः) पिता के व्रत में, पिता के कहने में चलने वाला हो, (मात्रा) माता के साथ (संमनाः) उत्तम मन, प्यार और स्नेह से (भवतु) रहने वाला होवे। (जाया) पत्नी (पत्ये) पति से (मधुमती) मधुर, मीठी, (शान्तिवां) शान्ति से युक्त (वाचं वदतु) वाणी बोलने वाली हो।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥

(अथर्व ३।३०।३)

मा। भ्राता। भ्रातरम्। द्विक्षन्। मा। स्वसारम्। उत। स्वसा। सम्यम् चः। सव्रताः। भूत्वा। वाचम्। वदत। भद्रया ॥

अर्थ—(भ्राता) भाई (भ्रातरं) दूसरे भाई के प्रति (मा द्विक्षन्) द्वेष न करे। (स्वसा) बहिन (स्वसारं) अपनी दूसरी बहिन के प्रति (मा द्विक्षन्) द्वेष न करे। (सम्मञ्चः) एक मत या एक मन वाले (सव्रताः) एक व्रत वाले (भूत्वा) होकर (भद्रया) प्यार और कल्याण की भावना से (वाचं) वाणी (वदत) बोलें।

वैदिक सन्देश निर्भयता, शूरवीरता, और साथ ही साथ विश्वमैत्री, शान्ति और सुख का है।

क

दृते दृहं मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि
भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा
सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा
समीक्षामहे । (यजु० ३६।१८)

दृते । दृहं । मा । मित्रस्य । मा । चक्षुषा । सर्वाणि । भूतानि । सम् । ईक्षन्ताम् । मित्रस्य । अहम् । चक्षुषा । सर्वाणि । भूतानि । सम् । ईक्षे । मित्रस्य । चक्षुषा । सम् । ईक्षामहे ॥

अर्थ हे (दृते) दुःख और अन्धकार के निवारक प्रभो! (मा) मुझे (दृहं) दृढ़ता दीजिए। (मा) मुझे मित्रस्य चक्षुषा) मित्र की आँख से (सर्वाणि भूतानि) सब प्राणी (सम् ईक्षन्ताम्) सम्यक् रूप से ठीक ठीक देखें। (अहं) मैं (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) आँख से (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणियों को (सम्-ईक्षे) सम्यक् रूप से देखूँ। (मित्रस्य चक्षुषा) मित्र की आँख से (समीक्षामहे) परस्पर हम सब देखें।

ख

यतो यतः समीहसे ततो नोऽभयं कुरु।
शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥
(यजु० ३६।२२)

यतः यतः । सम्+ईहसे । ततः । नः । अभयम् । कुरु । शम् । नः । कुरु । प्रजाभ्यः । अभयम् । नः । पशुभ्यः ॥

अर्थ—(यतः यतः) जहाँ-जहाँ से (सम्+ईहसे) आप आप सक्रिय हैं, सम्यक् चेष्टा करते हैं, (ततः) वहाँ से (नः) हमें

(अभयं) अयम, निर्भय (कुरु) कीजिए। (शं) सुखी, और (अभयं) निर्भय (नः) हमें (कुरु) कीजिए (प्रजाभ्यः) प्रजाओं से, और (पशुभ्यः) पशुओं से।

ग

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु॥

(अथर्व० १६।१५।५)

अभयम्। नः। करति। अन्तरिक्षम्। अभयम्। द्यावा। पृथिवी। उभे। इमे। अभयम्। पश्चात्। अभयम्। पुरस्तात्। उत्तरात्। अधरात्। अभयम्। नः। अस्तु॥

अर्थ—(नः) हमें (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष (अभयं) निर्भय (करति) करे, (द्यावा-पृथिवी उभे इमे) ये दोनों द्यावा-पृथिवी-आकाश से लेकर भूमण्डल तक के लोक (अभयं) निर्भय करें। (पश्चात्) पीछे की दिशा से, पश्चिम से (अभयं) हमें निर्भयता हो, (पुरस्तात्) सामने से, पूर्व से, (उत्तरात्) बायें से, उत्तर से (अधरात्) नीचे की ओर से (नः) हमें (अभयं) अभय (अस्तु) हो।

घ

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं
पुरो यः। अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा
मम मित्रं भवन्तु।

(अथर्व० १६।२५।६)

अभयम्। मित्रात्। अभयम्। अमित्रात्। अभयम्। ज्ञातात्। अभयम्। पुरः। यः। अभयम्। नक्तम्। अभयम्। दिवा। नः। सर्वा। आशा। मम। मित्रम्। भवन्तु॥

अर्थ—(मित्रात्) मित्र से (अभयं) हमें अभय हो, मित्र से हमें डर न हो, (अमित्रात्) शत्रु से (अभयं) हमें अभय हो, (ज्ञाताद्) जाने हुए से, परिचित से, अपनी जात-बिरादरी से (अभयं) हमें भय न हो, (यः) जो (पुरः) आगे है, उससे (अभयं) भय न हो, (नक्तं) रात में (अभयं) अभय हो, (दिवा नः) दिन में हम अभय हों, (सर्वा आशा) सभी दिशायें (मम) मेरी (मित्रं) मित्र (भवन्तु) होवें।

सब लोग मिलजुल कर काम करें, समाज का निर्माण सद्भावना, सद् विचार और समानता के आधार पर हो।

क

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह
चित्तमेषाम्। समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि॥
(ऋग्वेद १२।१९१।३)

समानः। मन्त्रः। सिमितिः। समानी। समानम्। मनः। सह। चित्तम्। एषाम्॥ समानम्। मन्त्रम्। अभि। मन्त्रये। वः। समानेन। वः। हविषा। जुहोमि॥

अर्थ—हमारे (मन्त्रः) विचार, हमारी मन्त्रणायें, आयोजनायें (समानं) समान हों, (समितिः) हमारी सभा-समितियाँ (समानी) समान विचारों की, (समानं मनः) हमारे मन समान भावनाओं के हों, (सह चित्तमेषाम्) हमारे चित्त एक भावनाओं के हों। (वः) तुम्हारे लिए (समानं मन्त्रं) समान मन्त्र (अभिमन्त्रये) मन्त्रणायुक्त करता हूँ। (समानेन हविषा) समान हविष, यज्ञ सामग्री, समान सम्पदा से मैं तुम्हें (जुहोमि) सम्पन्न करता हूँ।

ख

समानो व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥

(ऋग्वेद १०।१६१।४)

समानः । वः । आकूतिः । समानाः । हृदयानि । वः ॥ समानम् । अस्तु । वः मनः । यथा । वः । सुसह । असति ॥

अर्थ—(वः) तुम्हारी (आकूतिः) संस्कृति (समानः) समान हों, (वः) तुम्हारे (हृदयानि) हृदय (समानाः) समान हों। (वः) तुम्हारा (मनः) मन (समानं) समान हो, (यथा) जिससे (वः) तुम्हें (सुसह+असति) सब तुम्हारे गौरव के अनुरूप हो।

———

किसूमू का आर्य समाज

केन्या राष्ट्र के तीन नगर बहुत प्रसिद्ध हैं—नैरोबी, मोम्बासा और किसूमू। इन तीनों नगरों में ही आर्य समाज के विशाल भवन हैं। जमीन और इमारत को देखते हुए भारत के आर्य समाज मन्दिर इनकी तुलना में छोटे लगेंगे। हमारे बहुत से मन्दिर तो तंग गलियों में हैं, जहाँ मोटरों को खड़ा करने का स्थान नहीं है। किसूमू नगर छोटा है—ठीक तो नहीं कह सकता, पर बीस-पच्चीस हजार की आबादी होगी। प्रातः-काल की सैर में सारे नगर का चक्कर लग सकता है, पर सड़कें साफ सुथरी, और मन्दिर का प्रांगण भी बड़ा और व्याख्यान भवन भी बड़ा। पाठशाला की इमारत अलग भूमि पर और काफी अच्छी, जिसमें पढ़ायी का स्तर कान्वेण्ट के हमारे स्कूलों ऐसा-टाट बिछा कर बच्चों को पढ़ने की प्रथा केन्या देश में किसी स्कूल में है ही नहीं। सभी स्कूल यूरोपीय पद्धति पर साफ सुथरे हैं, जिनसे गरीबी या दारिद्रय की भावना उत्पन्न होती ही नहीं। पढ़ायी की फीस भी काफी ऊँची है, स्कूल की आय से धन बच जाता है, जिसका उपयोग अन्य सामाजिक कार्यों में भी किया जा सकता है। सभी स्कूलों में आधे से अधिक अफ्रीकी बच्चे पढ़ते हैं, और शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी है।

टँजानिया देश में स्वाहिली भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने का अच्छा प्रयास आरम्भ हो रहा है।

आर्यसमाज नैरोबी ने सुविधा के लिए एक बड़ी कार (जैसी हमारी स्टेशन बैगन होती है, और जिसे इस देश में कुम्भी या खुम्बी कहते हैं) ले रक्खी है जिससे यात्रा में सुविधा होती है। इसी कुम्भी में सवार हो कर मैं, आर्य समाज के प्रधान श्री गिरधारी लाल सेठी जी और प्रतिनिधि सभा के उपप्रधान श्री प्रीतम सेठी जी किसूमू के लिए २७ अगस्त को दोपहर को चले। बीच में थोड़ी देर नकूरू (Nakuru) की आर्य समाज में रुके भी। १९७१ में इस आर्य समाज में एक सप्ताह के लगभग मैं प्रीतम सेठी जी के परिवार का अतिथि रह चुका था। अब नकूरू में आर्य समाज परिवार के दो तीन घर ही रह गए हैं—कुछ लोग नैरोबी आ गए हैं, और कुछ लंडन या कैनाडा चले गए। अतः इस बार नकूरू आर्य समाज में व्याख्यानों का प्रबन्ध न हो सका। यही अवस्था एल्डोरेट के आर्य समाज की भी रही। येनकेन-प्रकारेण बच्चों का स्कूल चलता है। नाममात्र को कभी-कभी हवन भी हो जाता है। आर्य प्रतिनिधि सभा नैरोबी का इन आर्य समाजों को संजीवित रखने के लिए विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता है, नहीं तो इन समाज मन्दिरों की सम्पत्ति भी अपने हाथ से निकल जाएगी।

मैं अपनी पिछली यात्राओं में भी किसूमू आता रहा हूँ, पिछले वर्ष जब श्री प्रकाशवीर शास्त्री जी के साथ (१९७६) केन्या आया था तब भी यहाँ आया। किसूमू में कई आकर्षण हैं—यह विक्टोरिया झील के किनारे है। मीठे पानी की इतनी बड़ी झील कम देखने को मिलेंगी। किसूमू की पहाड़ियाँ भी

आकर्षक हैं। किसूमू के एक पार यूगाण्डा है, तो दूसरी पार केन्या। मार्ग में विषुवत् रेखा या इक्वेटर रेखा पड़ती है। यह भी कौतूहल की बात है कि हम कल्पना करें कि हम इक्वेटर पर खड़े हैं। जहाँ-जहाँ इक्वेटर रेखा सड़कों को काटती है, वहाँ शिला लेख और पट्टिकायें लगी हुई हैं।

आर्य समाज किसूमू ने जितने दिन मेरे व्याख्यान रक्खे, उतने दिन व्याख्यान के बाद सहभोज या लंगर का प्रबन्ध भी किया। व्याख्यानों में अच्छी रौनक रही, आर्य समाज का हॉल (व्याख्यान-भवन) काफी बड़ा है। हनुमान रोड, नई दिल्ली के बराबर लम्बा-चौड़ा। भवन में बैठने के लिए कुर्सियों का प्रबन्ध था। मेरी अपनी राय है कि बड़े नगरों में प्रमुख आर्य समाजों में व्याख्यान भवन में जमीन पर बैठने की पद्धति बन्द कर देनी चाहिए। जमीनों पर बिछी गन्दी दरियाँ और जाजिमें न धुल पाती हैं, न साफ रहती हैं, और गन्दे पैरों को लेकर लोग इन पर चलते हैं। बुढ्ढे-बुढ़िया जमीन पर बैठने में पर्याप्त कष्ट-भोगते हैं—वे बराबर आसन बदलते रहते हैं। समय और सुविधा के अनुसार हमें अपने रहन-सहन को बदलना होगा।

आर्य समाज किसूमू में मैंने तीन-चार व्याख्यान दिए। एक व्याख्यान थियोसोफिकल सोसाइटी में दिया। नैरोबी की थियोसोफिकल सोसाइटी में भी व्याख्यान दे चुका था। भारत के समान इन देशों में भी थियोसोफिकल सोसाइटियाँ हैं। इनका नेतृत्व बहुधा भारतीय थियोसोफिस्टों के हाथ में है। आर्य समाज के अधिवेशनों में केवल भारती आते हैं। किन्तु थियोसोफिस्टों के अधिवेशनों में एक दो परिवार गौरांगों के भी आपको मिल जायेंगे, और एक-दो परिवार अफ्रीका के मूल निवासी कृष्णवर्ण वालों के भी। थियोसोफिस्टों ने भारतीयों

के बीच में भी भारतीय धर्मों की अच्छी चर्चा कर दी है। मैंने इन अभारतीयों के मुख से भारतीय-तत्वदर्शन के पारिभाषिक शब्दों को सुना, तो बड़ा अच्छा लगा। गीता, उपनिषद् और योग के साहित्य से इन्हें अच्छा परिचय हो गया है। प्रयाग विश्वविद्यालय में मेरे एक अध्यापक और सहयोगी डॉ० इकबाल कृष्ण तैमिनी हैं। अब ७६ वर्ष की उनकी आयु है। वे बहुत पुराने थियोसोफिस्ट हैं। उन्होंने अँग्रेजी में योग और थियोसोफी पर कई सुन्दर पुस्तकें लिखी हैं। डॉ० तैमिनी की इन पुस्तकों से विदेशी थियोसोफिस्ट भी परिचित हैं। बड़े नगरों के विशिष्ट पुस्तक विक्रेताओं की दूकानों पर इनमें से कुछ पुस्तकें बिकती भी हैं। अफ्रीका के किसी पुस्तक बिक्रेता की दूकान पर आर्य समाज की एक पुस्तक भी आपको देखने को नहीं मिलेगी। मैंने दार-एस-सलाम, किसूमू, नैरोबी आदि नगरों में प्रदर्शिनियाँ देखीं, जिनमें मुसलमानी धर्म का साहित्य, बहाई-धर्म का साहित्य और कम्यूनिस्ट साहित्य प्रदर्शित होते देखा (अँग्रेजी माध्यम और स्वाहिली भाषा के माध्यम द्वारा), किन्तु भारतीय धर्मों का साहित्य बहुत कम देखने को मिलता है। विदेशों में आर्य समाज ने अपने प्रचार के केन्द्र तो बनाये, किन्तु आर्य समाज के साहित्य को भारतीयों के बीच में बेचने या बाँटने का प्रबन्ध बिल्कुल नहीं किया।

किसूमू में मेरे ऊपर स्नेह रखने वाले एक पुराने गुजराती वयोवृद्ध थे—श्री विट्ठल भाई हरजी जोबनपुत्रा। पिछली तीन यात्राओं में मैंने बराबर उनके दर्शन किए। उन्होंने एक छापाखाना भी खोल रक्खा था। इस बार जो मैं किसूमू गया, तो उनसे भेंट न हो पायी। वे अकेले गुजराती थे जो किसूमू में आर्य समाज के कार्यों में श्री बन्नामल खोसला आदि के साथ

आर्य समाज के कार्यों में सक्रिय रुचि रखते थे। ४ फरवरी १९७७ को उनका देहान्त हो गया, ८४ वर्ष की आयु थी। उनके पुत्र श्री सत्यव्रत विट्ठल भाई जोबनपुत्रा हैं, जिनके घर मैं तीन दिन रहा। सत्यव्रत किसूमू की रोटरी क्लब के सदस्य भी हैं, रोटरी क्लब में भी मेरा व्याख्यान हुआ। सत्यव्रत जी ने मेरा ध्यान रोटरी क्लब की कार्य-विधि की ओर दिलाया, और उन्होंने आग्रह किया कि रोटरी संस्था की कार्य प्रणाली की विशेषताओं का आर्य समाज के संगठन को अपनाना चाहिए। उनका विशेष आग्रह इस बात पर था कि हमारी संस्थाओं (जैसे सार्वदेशिक सभा या प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा) से अपने अधीन समस्त आर्य समाजों को प्रति वर्ष निश्चित निर्देश आने चाहिए, कि प्रत्येक अधिवेशन में क्या-क्या किया जाए, प्रधान या सभापति क्या करें, कोषाध्यक्ष क्या करे, मंत्रिमण्डल क्या करे, विशेष पर्वों या समारोहों पर क्या हो? रोटरी के केन्द्र से इस प्रकार का जो साहित्य प्रत्येक रोटरी को बराबर जाता है, उससे सत्यव्रत जी ने मुझे परिचित कराया। मैं चाहूँगा, कि दिल्ली, लखनऊ, प्रयाग, बम्बई और इसी प्रकार बड़े नगरों में जहाँ-जहाँ रोटरी क्लब हैं, या लायन्स क्लब हैं, उनकी कार्य प्रणाली का हम और हमारे अग्रणी नेता अध्ययन करें, और सुविधानुसार उनकी जो अच्छी बातें हैं, उनको लेने का प्रयत्न करें। जिले की (नगर और गाँव में) छोटी-छोटी आर्य समाजें हमारे कार्य क्षेत्र की इकाइयाँ हैं। हमारी केन्द्रीय संस्थायें अपने निर्वाचनों के संदर्भ में ही इनकी याद करती हैं, अथवा दशांश उगाहने के संदर्भ में, पर केन्द्रीय सभाओं से इन इकाइयों को क्या मिलता है, यह सन्दिग्ध है।

थियोसोफिकल सोसाइटी या रोटरी-लायन क्लबों को देखने

के बाद मेरा कुछ ऐसा विचार हो रहा है कि प्रमुख नगरों में प्रमुख आर्य समाजें अपने संघटन को तीन धाराओं में ले चलें—(१) जनसम्पर्क धारा, (२) विशेष बौद्धिक धारा, (३) स्वस्थ और पवित्र आमोद-प्रमोद धारा। हमारी वर्त्तमान पद्धति कुछ-कुछ पहले वर्ग की है। हमारे अधिवेशन भी निम्न मध्यम वर्ग के लोगों में ही सीमित हैं। निम्न वर्ग के लोग हमारे संघटन से दूर हैं—सड़कों पर झाड़ू लगाने वाला, जूते पर पालिश करने वाला (मोची), शाक-भाजी बेचने वाला (कुंजड़ा), मिट्टी के बर्तन बनाने वाला (कुम्हार), पान बेचने वाला (तमोली), रिक्शा चलाने वाला, ताँगा हाँकने वाला, लॉरी-टैक्सी ड्राइवर, कपड़े धोने वाला (धोबी)—ये हमारे संघटन में नहीं हैं (इन्हें आने की रोक तो कहीं नहीं है, पर हम अपने कार्यक्रमों में इन्हें आकर्षित नहीं कर सके)। इस जन-सम्पर्क का उत्कृष्ट उदाहरण सिक्खों के संघटन में आपको खूब मिलेगा। कुछ-कुछ भागवत और सत्यनारायण या रामायण की कथा में भी मिल जायेगा, और असंघटित रूप में हिन्दुओं के मेलों में भी।

हमने अपने संघटन को विशुद्ध बौद्धिक धारा से भी दूर रक्खा है। वेद-वेदांग का नाम तो हम लेते हैं, पर हमारे आर्य समाज के संघटन में देश के न गण्यमान इतिहासज्ञ हैं, न पुरातत्व-वेत्ता, न ज्योतिर्विद, न शिल्पी, न विज्ञानवेत्ता, न ऊँची कोटि के अध्यापक। इन वर्गों के लोगों से काम लेने के लिए उनके स्तर की गोष्ठियों का, और उन्हें सम्मान देने का हमें पृथक् आयोजन करना पड़ेगा। हमने अब तक ऐसा नहीं किया है, फलतः अखिल भारतीय, अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संघटनों में हमारे लोगों का प्रतिनिधित्व ही नहीं है। जिन नगरों में विश्वविद्यालय हैं, या उच्च स्तर के अन्वेषणालय, या प्रयोग-

शालायें या संस्थान, उन नगरों की कम-से-कम एक आर्य समाज को इस दिशा में रुचि लेने की आवश्यकता है। विशेष प्रतिष्ठित गोष्ठियों की आयोजना करके उच्च-स्तरीय विद्वन्मण्डली की रुचि अपनी ओर आकर्षित करनी चाहिए।

मैं देखता हूँ कि ऋषि लंगरों का प्रचलन हमारे विशेष समारोहों के अवसर पर बढ़ रहा है, जो व्यय-साध्य हैं। पर मैंने अपने देश में यह भी देखा है, और पूर्वी अफ्रीका के समृद्ध-देशों में भी कि कभी-कभी एक ही व्यक्ति इस सम्पूर्ण व्यय के वहन करने की उदारता प्रदर्शित करता है। किन्तु विशिष्ट लक्ष्य से आयोजित व्यवस्थित ढंग की जलपान गोष्ठियों के लिए आर्य समाज में कोई प्रबन्ध नहीं है। सम्पन्न नगरों के आर्य समाज मन्दिरों में व्यवस्थित रूप में बैठकर देश-विदेश से आये हुए व्यक्तियों को आमन्त्रित कर उनके साथ विचार-विमर्श करने की प्रथा हमें डालनी चाहिए। आपके निजी घर के सुन्दर ड्राइंग रूमों के समान आर्य समाज मन्दिरों में भी सम्पन्न कमरा इस काम के लिए सदा सुरक्षित और सुसज्जित रहे, तो बुराई क्या है ? कमरे के साथ स्वस्थ और स्वच्छ शौचालय हो और एक कान्फ्रेन्स रूम, जिसमें मेज कुर्सी के साथ १२-१५ व्यक्ति बैठ कर लघु गोष्ठियाँ कर सकें। जलपान के आधुनिक सुन्दर से सुन्दर पात्र भी हों, तो शोभा बढ़ जायेगी। हमारे सम्पन्न प्रतिष्ठित आर्य समाज के परिवारों ने सुख-सुविधा का जैसा आधुनिकीकरण कर लिया है, वैसा आर्य समाज के भवनों में भी कहीं-कहीं हो जाये, तो इससे हमें लाभ होगा।

आर्य समाज किसूमू, नैरोबी, मोम्बासा, दार-एस-सलाम, इन सबके आर्य समाज मन्दिरों में २५०-३०० व्यक्तियों के जलपानों और भोजन कराने की सम्पन्नता और व्यवस्था भी

है। विवाहों के अवसरों पर विवाह संस्कार भी मन्दिरों में होते हैं, और कभी-कभी १०००-२००० व्यक्ति तक भोजन करते हैं, पर जलपान से संलग्न विशिष्ट गोष्ठियों की प्रथा अभी यहाँ भी नहीं चल पायी है।

केन्या देश में, और टैंजानिया में भी प्रतिवर्ष कुछ-न-कुछ परिवार अफ्रीका को परित्याग करके लंडन, कैनाडा और संयुक्त राष्ट्र अमरीका, चले जाते हैं, इसलिए आर्य समाज के साप्ताहिक अधिवेशन सूने होने लगे हैं। अँग्रेजी भाषा से अभ्यस्त योग्य पुरोहितों और कार्यकर्त्ताओं की यहाँ बराबर आवश्यकता बनी रहती है। किसूमू में कोई अच्छा पुरोहित आ गया, तो काम व्यवस्थित हो जाता है, पर उसके चले जाने पर अव्यवस्थित हो जाता है। विभिन्न उद्देश्यों पर भारत से डेपुटेशन में गये हुए व्यक्तियों में से भी कभी-कभी समाज-सेवी हर जगह मिल जाते हैं, इनसे भी आर्य समाज के संघटन को लाभ होता है।

रेडियो पर वार्त्ता

केन्या की राजधानी नैरोबी है, और नैरोबी के रेडियो-प्रसारण तंत्र का नाम "वॉइस ऑव् केन्या" (केन्या-वाणी) है। मङ्गलवार २६ जुलाई को इस रेडियो स्टेशन से मेरी एक वार्त्ता हिन्दी में सवा नौ बजे रात को प्रसारित हुई। वार्त्ता को मैंने अपने लिए टेप भी करा लिया है। वार्त्ता मौखिक दी गयी थी, इसके भाव का सारांश यहाँ दे रहा हूँ।

केन्या का देश पर्वतों, उपत्यकाओं, वनों और झीलों के लिए प्रसिद्ध है। केन्या पर्वत के समीपवर्ती दृश्य इस देश के सौन्दर्य को अलंकृत कर रहे हैं। आपके इस देश में मेरी यह चौथी यात्रा है। १९७१ में मैं पहली बार आया, दूसरी यात्रा १९७४ में हुई, तीसरी पिछले वर्ष १९७६ में। अब फिर आ गया हूँ। मैं अपने देश से, देश के आर्य परिवार से, यहाँ के सभी लोगों के लिए शुभकामनायें लाया हूँ,—मैं इस बार फिर आर्य समाज नैरोबी के आमन्त्रण पर आया हूँ, उनके वार्षिकोत्सव में भाग लेने के लिए। आप जानते हैं कि बीसवीं शती के आरम्भ में ही, वस्तुतः उन्नीसवीं शती के अन्तिम दशक में भारतीय इस देश में काफी संख्या में आये—मोम्बासा से कम्पाला तक रेलवे लाइन निकालने के अभिप्राय से, उस समय की सरकार ने उन्हें इस देश में आने का अवसर दिया।

पञ्जाब से और गुजरात से आये हुए लोगों ने यहाँ आर्य समाज की १६०३ के लगभग संस्थापना की। आर्य समाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द ने १८७५ में पहली आर्य समाज बम्बई में स्थापित की। इस संस्था का उद्देश्य संसार का उपकार करना है। देश-विदेश में यह संस्था अच्छा काम कर रही है। आर्य समाज ने आपके देश में बच्चों की शिक्षा का काम उस समय आरम्भ किया, जब यहाँ शिक्षा का न भारतीयों के लिए प्रबन्ध था, न यहाँ के मूलनिवासियों के लिए। आपका देश १६६३ में स्वतंत्र हुआ। अब तो आर्य समाज द्वारा सचालित विद्यालयों में भारतीय ही नहीं, केन्या के शतियों से रहने वाले परिवारों के बालक भी सैकड़ों की संख्या में अध्ययन कर रहे हैं। आपके देश में स्वतंत्रता के बाद तेजी से उन्नति की है। यह युग विज्ञान और शिल्प का है। मैं तो भारत के एक पुराने विश्व-विद्यालय में विज्ञान पढ़ाता रहा। इस युग में अन्धरूढ़ियों और परम्परा से चले आये अन्धविश्वासों के लिए कोई स्थान नहीं है। आर्य समाज का उद्देश्य अन्धविश्वासों और रूढ़ियों से जनता को मुक्त करना है। धर्म और आस्तिकता के सच्चे रूप प्रसारित करना है।

केन्या वासियों को बहुत-बहुत बधाइयाँ और आशीर्वाद।

———

स्वर्गीय श्री जयन्त मधवाणी

मङ्गलवार २५ जुलाई १९७७ को स्वर्गीय श्री जयन्त मूलजी भाई मधवाणी के परिवार के पुत्रों और अन्य बान्धवों ने अपने घर पर हवन की व्यवस्था की थी, और नैरोबी नगर से १५-२० मील दूर अपने भव्य भवन में आर्य परिवार को आमंतित किया। पं० वन्शीधर जी ने हवन कराया। यह हवन जयन्त मधवाणी की मृत्यु-तिथि की स्मृति में था। हवन के अनन्तर मैंने परिवार को अंग्रेज़ी में आशीर्वाद देते हुए, जयन्त मधवाणी के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा—आप लोगों को स्मरण होगा कि २५ जुलाई की तारीख इस परिवार के लिए ऐतिहासिक दिवस है—एक दीपक था जो इस दिन १९७१ ई० में हम लोगों की दृष्टि से सदा के लिए मानों बुझ गया। जयन्त मधवाणी जी की आत्मा कहाँ और किस वेश में है, हम नहीं जानते। यदि वे कहीं पास में भी होंगे, तब भी न वे हमें पहिचानेंगे, न हम उन्हें। पर आत्मा अमर है, वे कहीं तो होंगे ही। हमारे परिवारिक सम्बंध केवल शरीर के सम्बन्ध हैं। जयन्त के परिवार के जो जीवित हैं, वे तो उन्हें भुला नहीं सकते। उगाण्डा-व्यापारियों के वे राजा थे, जैसे किसी समय श्री नानजी भाई कालिदास मेहता। इन दोनों का सम्बन्ध

आर्य परिवार से था। जयन्त जी की मृत्यु से आर्य समाज को भारी क्षति हुई है।

मुझे याद है कि १९७१ ई० में जब १८ जुलाई को नैरोबी पहुँचा, तो जयन्त जी नई दिल्ली गए हुए थे—उनकी इच्छा अमरनाथ की यात्रा करने की थी—दिल्ली के प्रसिद्ध अशोक होटल में ठहरे हुए थे कि रात को हृदयगति अवरुद्ध हो गयी, डाक्टर आ भी न पाया कि प्राण-पखेरू उड़ गये! मनुष्य क्या-क्या मनसूबे बनाता है, और होता क्या है? जहाँ कहीं भी भारतीय थे, यह समाचार सुनकर स्तब्ध रह गए। व्यापारी जगत् का एक मूर्धन्य-भारतीय (उगाण्डा के ऐश्वर्य का निर्माता) धरती से उठ गया। इस समय तो उगाण्डा का राष्ट्रपति जनरल ईदी अमीन भी भारतीयों के प्रति सहानुभूति और सहयोग की भावना रखता था। इस अवसर पर उसने भी ये शब्द कहे—

"Jayant has been the son of Uganda whose activities and ways of life always be remembered. His greatness of mind, his generosity and unselfish consideration for others, his spirit, his simplicity, his devotion to services for humanity, his ability to plan for deveeopment, are but a few of the many superb qualities in Jayant we can never forget."

जयन्त तो वही रहा, पर अमीन बदल गया—थोड़े दिनों बाद ही उगाण्डा में भारतीयों के प्रति नयी नीति व्यवहृत होने लगी। जयन्त के परिवार को भी करोड़ों की सम्पदा छोड़ कर उगाण्डा से विदा लेनी पड़ी—अनेक कहानियाँ प्रचलित हुईं—जितने मुँह उतनी बातें!

मैं १६७१ में १४ अगस्त को उगाण्डा की राजधानी कम्पाला पहुँचा था। एक सप्ताह वहाँ रहा। इसी सप्ताह में ईसाई जगत् के पोप पॉल (VI) ने जयन्त मधवाणी की जन-सेवाओं के उपलक्ष में एक अभिनन्दन पत्र "Certificate of MERIT of the GREGORIAN CROSS" (Posthumous award. मृत्यु के बाद), उनके बेटे नीतिन मधवाणी को भेंट किया। इस सम्बन्ध में कम्पाला के गिरजाघर (Namirembe Cathedral) में बड़ा समारोह आयोजित किया गया था।

जयन्त मधवाणी जी का शव नई दिल्ली से उनके ककीरा (KAKIRA) वाले घर में लाया गया। अन्त्येष्टि हुई, और उनके फूल विक्टोरिया झील के किनारे जिंजा में २७ जुलाई को अफ्रीका की सबसे बड़ी नील (the Nile) में प्रवाहित कर दिये गए। नील नदी का उद्गम जिंजा नगर के पास है, जो कम्पाला से दूर नहीं है। मैंने नील-नदी का यह उद्गम देखा है।

मुझे याद है कि मैंने कम्पाला से लौटते समय ककीरा के भव्य भवन में जयन्त मधवाणी जी की पत्नी श्रीमती माना मधवाणी से भेंट की थी, और समवेदना और सहानुभूति प्रकट की।

आज के इस हवन के अनन्तर जयन्त जी के परिवार ने नैरोबी आर्यसमाज की संस्थाओं के लिए ५ हजार शिलिंग का दान दिया।

जयन्त जी के सबसे बड़े पुत्र नीतिन हैं, और अन्य दो सन्तानें निमीषा और अमित हैं। पिता के व्यवसाय को ये लोग धरती के अनेक देशों में विस्तृत कर रहे हैं।

मधवाणी परिवार के लोगों ने स्वर्गीय जयन्त मूलजी भाई मधवाणी की स्मृति में दो भव्य पुस्तकें प्रकाशित की हैं, इनमें से एक तो लंडन में छपी है जिसमें जयन्त के सम्बन्ध में प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों के लेख हैं, और इनका सम्पादन रॉबर्ट बेकर (Becker) और नीतिन मधवाणी ने किया है। दूसरी बड़ी पुस्तक भारत में मुद्रित और नैरोबी से प्रकाशित है। जयन्त का जन्म जिजा (उगाण्डा) में १४ जुलाई १६२२ को हुआ, और मृत्यु के समय वे ४६ वर्ष के ही थे।

नैरोबी से दार-एस-सलाम

२ अगस्त को नैरोबी आर्य समाज और स्त्री आर्य समाज का वार्षिकोत्सव समाप्त हो गया। मेरा कार्यक्रम टैंजानिया राष्ट्र जाने का निश्चित हो गया, जिसकी राजधानी दार-एस-सलाम है। ५ अगस्त को नैरोबी से मुझे इथियोपियन हवाई जहाज के द्वारा यह यात्रा करनी थी। शाम को ७ बजे के लगभग यह जहाज नैरोबी से ऊपर उठा—पूरी यात्रा ६५ मिनट की थी। २० मिनट की उड़ान के बाद ऐसा लगा कि वायुयान अधिकारी और परिचारिकायें आवश्यकता से कुछ अधिक व्यग्र हैं। यात्रियों को पेटियाँ बाँधने का आदेश दे दिया गया। व्यग्रता बढ़ती गयी। थोड़ी देर के बाद एक परिचारिका आयी ओर उसने यात्रियों की ऐनकें उतरवा लीं, और एक थैले में बन्द कर दीं। कुछ देर बाद सबसे जूते खोल लेने के लिए कहा गया। सब नंगे पैर हो गये। साथ के हैंडबैग बटोर कर विमान में ऊपर चढ़ा दिए गये। कप्तान ने घोषित किया, कि जहाज में कुछ ध्वनि आ रही है, जिसके कारण का ठीक पता नहीं लग रहा। वायुयान में सभी देशों के १५० यात्री रहे होंगे—बुड्ढे, बच्चे, नर-नारी। लोगों के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। चुपचाप सब सिर नवाये बैठ गये। ऐसा लगा कि न जाने क्या होने वाला है। मैं तो संन्यासी था—संन्यासी को का चिन्ता ? संन्यासी होने का लाभ इस समय मुझे पता लगा। जहाँ सब चिन्तित थे, मुझे मुस्कराहट आ रही थी—यह तो

विचार आता था कि इन बच्चों का क्या होगा,—इनकी कोई सहायता कर सकूँगा या नहीं।

दार-एस-सलाम की रोशनियाँ दिखाई पड़ीं, किन्तु कैप्टन ने कहा कि विमान धीरे-धीरे नीचे उतरेगा। ४५ मिनट दार-एस-सलाम के एयरपोर्ट पर चक्कर लगाये—दूसरे हवाई जहाज पीछे रोक दिए गए। टंकी का पेट्रोल जब सब समाप्त हो गया तो जहाज उतरा—ईश्वर की कृपा से जब धरती पर उतर गया—लोगों ने तालियाँ बजायीं। एयरपोर्ट पर फायर ब्रिगेड, और अस्पताल की गाड़ियों का पूरा प्रबन्ध कर लिया गया था। एयरपोर्ट पर अतिथियों को लेने वाले व्यक्ति चिन्तित हो रहे थे—आर्य महिलाओं ने मुझे बताया कि वे गायत्री-पाठ कर रही थीं। एक सज्जन को (जिनकी पत्नी और बच्चे आ रहे थे) हार्ट-अटैक हो गया, मूर्च्छित हो गये। मृत्यु के द्वार पर पहुँच कर मानों हम सब वापस आ गए हों।

कुछ भी हो सकता था—पर कुछ न हुआ। प्रभु को लोगों के हृदय धन्यवाद दे रहे थे।

यह हम लोगों को नहीं मालूम कि दुर्घटना की आशका सच्ची थी या विमान चालकों की चातुरी और साहस से अवश्यम्भावी दुर्घटना से बचा जा सका। मेरे जीवन का यह पहला अनुभव था।

शनिवार और रविवार को आर्य समाज दार-एस-सलाम के भव्य भवन में दो व्याख्यान दिए। टैंजानिया के अन्य नगरों में और जैंजीबार भी मेरा जाने का विचार है। २३ अगस्त को वापस मोम्बासा पहुँचना है। पहले नैरोबी जाऊँगा, तब मोम्बासा।

———

वेद का सन्देश

[केन्याटा कालेज में गोष्ठी]

प्रयाग विश्वविद्यालय की पुरानी छात्रा डॉ॰ यशोधरा कन्सल बुधवार २० जुलाई १९७७ को आर्य समाज नैरोबी (केन्या, पूर्व अफ्रीका) के वेद पारायण यज्ञ की यजमान थीं। उनका आग्रह था कि मैं उनके घर एक रात रहूँ। यशोधरा जी के पति श्री हरवंश लाल कन्सल भारतीय सरकार के डेपुटेशन पर नैरोबी आये हुए हैं, इन्जीनियर हैं—जल-व्यवस्था के परामर्श विभाग में कार्य करते हैं। डॉ॰ यशोधरा केन्याटा कॉलेज (Kenyatta College) में प्राणिशास्त्र पढ़ाती हैं। यह कॉलेज एक प्रकार से टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज है—स्नातक और स्नातकोत्तर-प्रशिक्षण के लिए। यशोधरा को कॉलेज-क्षेत्र में ही विद्यालय की ओर से घर मिला हुआ है। २० जुलाई की रात मैंने वहाँ बितायी। २१ ता॰ को प्रातः १० बजे यशोधरा ने अपने घर पर एक गोष्ठी का आयोजन किया था और कॉलेज के अध्यापकों और उनके परिवारों को आमन्त्रित किया— अतिथियों में भारतीय भी थे, केन्यावासी भी और अमरीकी और यूरोपी भी। गोष्ठी में मुझे (The Vedas : their message) विषय दिया गया था। मुझे बताया गया था कि अधिकांश

अभारतीय अतिथियों को पता भी नहीं है कि "वेद" से क्या अभिप्राय है। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से मैंने वैदिक साहित्य और उसकी प्राचीनता से परिचय कराया। हमारी मान्यता है कि वेद मनुष्य के उद्बोधन के लिए ईश्वर से स्वतः प्रादुर्भूत हैं (शतपथ)। यह ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में विकसित मनुष्य को ऋषियों के माध्यम से मिला।

वैदिक भाषा के शब्दों का प्रचलन तत्सम और तद्भव रूप में यूरोपीय भाषाओं में बराबर होता रहा है—अतः ऋग् आदि वेदों की प्राचीनतमता स्पष्ट है। वैदिक साहित्य को आर्य ऋषियों ने जिस प्रकार आज तक सुरक्षित रक्खा है, वह विश्व के इतिहास में अनन्यतम अद्भुत चमत्कार है। वेद का ज्ञान उस समय का है, जब न मन्दिर थे, न मस्जिद, न गिरजे, न पादरी, पुजारी या मुल्ला, न अवतार, न पैगम्बर। ईश्वर से हमारा सीधा सम्बन्ध था—वह सृष्टिकर्त्ता, हमारे जीवन-मरण का आधार, पुण्य-फल का व्यवस्थापक, अन्तःकरण का एकमात्र आलोक और ज्ञान एवं आनन्द का परम स्रोत था। जीवन के उदात्त सिद्धान्तों का प्रतिपादन, शांति, मैत्री, अभय, स्वस्ति, सौमनस्य के साथ-साथ सत्य, श्रद्धा दीक्षा—ये धर्म के अंग थे। जीवन और मृत्यु का चक्र लिए हुए मनुष्य और अन्य जीवधारी अनन्त मार्ग के पथिक हैं और इस यात्रा में जन्म और मृत्यु दो द्वार हैं दो जीवनों के बीच के द्वार। जो पैदा हुआ है वह अवश्य मरेगा, जो मरता है वह निश्चयपूर्वक फिर पैदा होगा, इस प्रकार आवागमन के चक्र के द्वारा शाश्वत रहने वाला आत्मा प्रभु के न्याय और दया पर आश्रित व्यवस्था से आवागमन द्वारा अपनी निर्बलताओं को दूर करता हुआ प्रभु से ज्ञान और आनन्द प्राप्त करने का प्रयास करता है। इसी प्रयास में उसकी पूर्णता

है। इस प्रकार के आवागमन द्वारा मनुष्य अपना बन्धुत्व और परिवार का ऐसा सहज संबंध पशु-प्राणिमात्र से स्थापित करता है।

लघुवक्तृता के अनतर गोष्ठी के सदस्यों ने प्रश्न पूछे—बहुधा ये प्रश्न आवागमन के सिद्धान्त पर थे, क्योंकि भारतीय धर्मों के अतिरिक्त जो भीं अन्य धर्म विदेश में प्रचलित हैं वे पुनर्जन्म के व्यापक सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते।

गोष्ठी और वार्तालाप में भाग लेने वाले व्यक्तियों में संयुक्त राष्ट्र अमरीका के भौतिक शास्त्री डॉ० पार्कर गार्डन, यू० के० देश के डॉ० जोड़ी फिल्स (वनस्पतिज्ञ), डॉ० राधारोस्ट, और भारत के डॉ० मिश्र (जीव रसायनज्ञ), और प्राणिशास्त्र विभाग के पौल, स्वागी और पीटर (केन्यावासी) थे। केन्याटा कॉलेज के परिवारों में भारतीय धर्मों के जानने के सम्बन्ध में पिपासा बढ़ी है। डॉ० यशोधरा की इच्छा है कि समय-समय पर कॉलेज में बराबर गोष्ठियाँ होती रहें, जिनमें सभी को विचार-विनिमय करने का अवसर मिले।

[इस विषय के आधारभूत वेद मन्त्र पृ० १३४-१४६ पर देखिये।]

अनन्त मार्ग पर चलने वाला अणुजीव सुख से दुःख की ओर, और दुःख से सुख की ओर, दोनों ही दिशाओं में, यात्रा करता रहता है। धर्म वह है जो दुःख से सुख की ओर ले जाये, अज्ञान से ज्ञान की ओर, अन्धकार से ज्योति या प्रकाश की ओर,—साधारण अभ्युदय से उन्नततर निःश्रेयस की ओर। धर्म से विकास होता है, अधर्म से पतन या अवनति।

—स्वामी सत्यप्रकाश

(२)

जिसने अहिंसा और सत्य को नहीं अपनाया वह ईश्वर का प्यारा नहीं हो सकता। अहिंसा ही रस माधुरी है—सर्वजन-हिताय, सर्वलोकहिताय के मूल में अहिंसा है। इसी का परिणाम वैर-त्याग है। जो वैर और द्वेष करता है वह वैज्ञानिक भी नहीं हो सकता, न आस्तिक, न योगी, और न भद्र पुरुष। जिसने अहिंसा का व्रत नहीं लिया, वह सत्यप्रिय भी नहीं हो सकता। अन्धविश्वास फैलाने वाला व्यक्ति न योगी हो सकता है, न अवतारी, न ईश्वर का भक्त। वह तो छली, छद्मी, कपटी और स्वार्थी है, निरीह जनता को मूर्ख बनाने का उसने षड्यन्त्र रच रक्खा है। ईश्वर-प्रणिधानी व्यक्ति सत्य के प्रति सतर्क रहता है; क्योंकि प्रभु सत्यस्वरूप है। सत्य की उपलब्धि एक सरित-प्रवाह है जो अनुभूति और अनुसन्धान के दो कूलों के बीच में निरन्तर आगे बहता रहता है। ईश्वर-प्रणिधानी कर्म-फल को प्रभु को समर्पित करता रहता है, किन्तु कर्म का परित्याग करके आलसी बनकर नहीं बैठता। संन्यासी और त्यागी होते हुए भी वह अति-क्रियावान् है।

—स्वामी सत्यप्रकाश

प्रभु को छोड़कर अन्य कोई न सर्व
न सर्वशक्तिमान् । अतः कोई चाहे पैगम्ब
हो, भगवान्, ऋषि, योगी या अवतारी
की व्यवस्था में हस्तक्षेप करने वाला न
व्यवस्था न्याय पर आश्रित है; उसका
किसी के साथ पक्षपात नहीं । दण्ड और
दुःख और सुख की अनुभूतियाँ हैं । द
मनुष्य की निवृत्ति दुरितों (दुश्चरित्रों) से
के परिणामस्वरूप मनुष्य की प्रवृत्ति
प्रोत्साहित होती है । परमात्मा की व्यव
अपने कल्याण के लिए सुख और दुःख दोनों की प्राप्ति होती है । जो ईश्वर की इस व्यवस्था में आस्था नहीं रखता, वह आस्तिक कहलाने का अधिकारी नहीं है । यह व्यवस्था प्रभु के हाथ में है और इस व्यवस्था के संचालन में प्रभु को किसी के सहयोग की आवश्यकता नहीं है ।

—स्वामी सत्यप्रकाश

(४)

सब युगों में और सब देशों में जो एकसमान व्यवहार्य हो, वह धर्म है । व्यक्ति, अवतार, पैगम्बर, तीर्थ, पंडा, पुरोहित, झंडा, मन्दिर, मस्जिद और गिरजे की कल्पनाओं ने सम्प्रदायों को जन्म दिया है, जिनसे धर्म की हानि हुई है । अवतारवाद और पैगम्बरवाद दोनों से ही धर्म की ग्लानि और धर्म की हानि हुई है ।

—स्वामी सत्यप्रकाश